कुल्लू देव परम्परा

बाहरी सराज



कुल्लू देव परम्परा

बाहरी सराज



हिमाचल अकादमी

हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी

क्लिफ ऐण्ड एस्टेट, शिमला-171001

कुल्लू देव परम्परा

परामर्श

मनीषा नंदा

प्रधान सचिव, भाषा-संस्कृति एवं पर्यटन

बी.एम. नाण्टा

उपायुक्त, ज़िला कुल्लू

संपादक

डॉ. तुलसी रमण

सह संपादक

रमेश जसरोटिया

डॉ. श्यामा वर्मा

सूनृता गौतम

पर्यटन विकास परिषद्, ज़िला कुल्लू से प्राप्त
वित्तीय अनुदान के अंतर्गत प्रकाशित

ISBN : 81-86755-65-9
प्रकाशक : सचिव, हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी
क्लिफ-ऐण्ड-एस्टेट, शिमला-171001

प्रथम संस्करण : 2011
मूल्य : रु. 100.00
कम्पोज़िंग : अरशद अली
मुद्रक : क्रियेटिव एडवर्टाइज़र्ज़ एण्ड प्रिंटर्ज़
1116, मेन बाज़ार पहाड़गंज, नई दिल्ली - 110 055

आवरण
मुख पृष्ठ : कुल्लू दशहरा के अवसर पर रघुनाथजी की पारम्परिक रथ-यात्रा का दृश्य
अंतिम पृष्ठ : अंबिका माता, निरमंड (ऊपर) तथा शमशरी महादेव, शमशर, आनी के मंदिर

पुस्तक डिज़ाइन : इश्तिहार, नई दिल्ली

Kullu Dev Parampara : Bahari Saraj

Published by : Secretary, Himachal Academy of Arts, Culture and Languages, Shimla-171001, Himachal Pradesh
Edition : 2011
Price : **Rs. 100/-**

आमुख

देव आस्था की परम्परा

प्रेम कुमार धूमल

मुख्यमंत्री हिमाचल प्रदेश एवं अध्यक्ष, हिमाचल अकादमी

आज का कुल्लू प्राचीन कुलूत गणराज्य रहा है। महाभारत में कुलूत तथा त्रिगर्त गणों का उल्लेख आया है। विष्णु और मार्कण्डेय पुराणों में भी कुलूत के संदर्भ हैं। कनिंघम ने अपनी पुस्तक 'कॉइन्स ऑफ एन्शियंट इंडिया' में एक ऐसे सिक्के का वर्णन किया है, जिस पर ब्राह्मी लिपि में 'राज्ञ कोलूतस्य वीरयशस्य' अंकित है। इस सिक्के को पुराविदों ने पहली या दूसरी शताब्दी का माना है। चीनी यात्री ह्वेन्त्सांग ने भी लिखा है कि दूसरी शताब्दी में कुलूत एक स्वतंत्र राज्य था। इससे स्पष्ट है कि कुल्लू का पुराना नाम कुलूत था और यह राज्य प्रथम शताब्दी में भी अस्तित्व में था।

हिमाचल प्रदेश का समस्त भू-भाग आदि काल से ही देव-भूमि रहा है। विपाशा, शतद्रु, इरावती और असिक्नी आदि इस भू-भाग की वैदिक नदियाँ हैं। कुल्लू ज़िला का भू-भाग विपाशा (व्यास) और शतद्रु (सतलुज) के मध्य पड़ता है, इसलिए दोनों बड़ी नदियों के तटों के रास्ते इस क्षेत्र में आकर ऋषि-मुनियों और देव-तुल्य साधकों ने यहाँ के अनेक सुरम्य स्थलों पर साधना की। यही कारण है कि कुल्लू की भूमि में आज भी मनु, व्यास, वशिष्ठ, लोमश, मार्कण्डेय, परशुराम आदि की ग्रामीण मंदिरों में लोक-देवताओं के रूप में पूजा होती है।

कुल्लू की देव-परम्परा में कई धाराएँ समाहित हैं। यहाँ शैव-शाक्त देवी-देवता; ब्रह्मा, विष्णु और शिव सब लोक देवता हैं। ऋषि-मुनि, नाग-नागिन, नारायण, वीर और जोगनियाँ आदि ग्राम देवी-देवताओं के रूप में स्थापित हैं। अठारह करडू, अठारह नाग और अठारह नारायण की गणना इस परम्परा में विशेष रूप से होती है। एक ओर सूर्य-पूजा की परम्परा है तो दूसरी तरफ महाभारत की हिडिम्बा, देवी रूप में पूज्य है। कुल्लू का दशहरा देवी-देवताओं और उनकी प्रजा का पारम्परिक महोत्सव है, जिसमें किसी समय कुल्लू राज्य के 365 लोक-देवता प्रजा सहित सम्मिलित होते थे। यह उत्सव राजा जगत सिंह के समय में सतरहवीं शताब्दी के मध्य में प्रारंभ हुआ था। आज भी डेढ़ सौ के लगभग देवी-देवता रघुनाथजी की अध्यक्षता में इस उत्सव में भाग लेते हैं। रघुनाथजी के शासन में इस देव-समाज की एक ऐसी व्यवस्था है, जिससे इस क्षेत्र का हर व्यक्ति गहरी आस्था के साथ परम्परा से जुड़ा है।

इधर इस देव-आस्था की ओर नयी पीढ़ी का ध्यान कम होता जा रहा है। इस परम्परा के इतिहास सूत्र कहाँ जाकर जुड़ते हैं, इससे सम्बंधित तथ्यात्मक सामग्री का भी अभाव है। समय के साथ लोकपक्ष का यह ज्ञान लुप्त हो रहा है और इसमें कई नयी कड़ियाँ भी जुड़ रही हैं। इसलिए हमारे मन में यह विचार आया कि स्थानिक समाज के सर्वांग से जुड़ी इस देव-परम्परा को लेकर ग्राम स्तर पर जानकारी एकत्र करके एक दस्तावेज तैयार किया जाए। यह कार्य हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी को सौंपा गया था और इस योजना की यह पहली पुस्तक बाहरी सराज के निरमंड तथा आनी खंडों के देवी-देवताओं से सम्बंधित सर्वेक्षण पर आधारित है। इसी क्रम में कुल्लू-मनाली तथा बंजार आदि क्षेत्रों से सम्बंधित दो अन्य पुस्तकें भी प्रकाशित की जा रही हैं। इस तरह ग्राम स्तरीय सर्वेक्षण पर आधारित सामग्री प्रकाशित होने से जहाँ सामान्य पाठकों और सांस्कृतिक अभिरुचि के पर्यटकों को इस देव-परम्परा की जानकारी मिल सकेगी, वहीं विद्वान् शोधार्थी इसके विभिन्न पक्षों पर आगे शोध भी कर सकेंगे।

प्राक्कथन

सांस्कृतिक पर्यटन के आयाम

मनीषा नंदा

प्रधान सचिव, भाषा-संस्कृति तथा पर्यटन एवं उपसभापति, हिमाचल अकादमी

कुल्लू की देव परम्परा को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखते हुए आभास होता है कि यह भूमि आदिकाल से ही यात्रियों को आकर्षित करती आ रही है। इस बात की पुष्टि उन ऋषि-मुनियों के पौराणिक प्रसंगों से होती है जो समग्र भारतीय मनीषा के मूलाधार हैं और कुल्लू क्षेत्र में ग्राम-देवताओं के रूप में आज भी पूजे जाते हैं। प्रतीत होता है कि समय-समय पर ये ऋषि-मुनि यात्रा व साधना के उद्देश्य से इस ओर आते रहे होंगे। यहाँ उनका प्रभाव बराबर बना रहा और कालांतर में वे लोक देवता के रूप में स्थापित हो गए। हिमालय आदि काल से ही पूरे देश के लोगों को अपने अँचल में आमंत्रित करता रहा है। जो भी प्रकृति प्रेमी और साधक आते रहे उनके ठहराव के लिए कुल्लू की भूमि भौगोलिक कारणों से भी उचित रही होगी। सुदूर अतीत में व्यास नदी के तट से आनेवाले यात्रियों के लिए लाहुल रोहतांग के पार रहा और सतलुज के रास्ते आनेवालों के लिए किन्नौर के पहाड़ दुर्गम थे। इसलिए अधिकांश यात्री कुल्लू की सुरम्य घाटियों में ही रम गए होंगे। यहाँ आज भी अधिकांश पर्यटकों के लिए यही स्थिति है।

कुल्लू की देव-परम्परा के पौराणिक, ऐतिहासिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक महत्त्व को देखते हुए यह शोध-सर्वेक्षण माननीय मुख्यमन्त्री की घोषणानुसार, उन्हीं के मार्गदर्शन में अकादमी द्वारा शुरू किया गया है। यह कार्य प्रकृति और संस्कृति दोनों पक्षों को उद्‌घाटित करने वाला है।

इधर विश्व भर में पर्यटन के कई आयाम सामने आये हैं। प्राकृतिक सौंदर्य वाले भू-भागों की यात्रा के साथ ही दुर्गम पहाड़ों पर साहसिक यात्राओं का भी अलग आकर्षण रहता है। हिमाचल प्रदेश में बदलते मौसमों के साथ पर्वतीय सौन्दर्य की अनुपम छटा दर्शनीय रहती ही है, इसके साथ देव-संस्कृति भी धार्मिक-सांस्कृतिक रुचि वाले पर्यटकों को आकर्षित करती है, क्योंकि लोक देवताओं के मंदिर दर्शनीय हैं और जन-जीवन की बहुरंगी छटा वाले मेले-उत्सव भी इन्हीं देव-मन्दिरों के प्रांगणों में वर्ष भर आयोजित होते रहते हैं।

इस सर्वेक्षण से प्राप्त सामग्री को अकादमी द्वारा तीन खंडों में प्रकाशित किया जा रहा है और इसके लिए आर्थिक अनुदान कुल्लू की पर्यटन विकास परिषद् की ओर से प्रदान किया गया है। पर्यटन विभाग द्वारा 'हर गाँव की कहानी' योजना के अन्तर्गत ग्रामीण जनजीवन के बीच से ऐसे किस्से-कहानियाँ एकत्र करके प्रकाशित किए जा रहे हैं, जो समाज में श्रुति-परम्परा से चले आते हैं। पर्यटक भी इसमें विशेष रुचि लेने लगे हैं।

अकादमी द्वारा किया जा रहा यह शोध-सर्वेक्षण कार्य इस दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण साबित होगा कि इसमें हर गाँव के आराध्य देव की कहानी के साथ जुड़े वहाँ के आस्थामय जीवन की झाँकी भी आ जाएगी। इस तरह सांस्कृतिक पर्यटन की दिशा में यह सर्वेक्षण उपयोगी साबित होगा। दूर-दराज के गाँवों तक पहुँचकर सूचनाएँ जुटाने और उपलब्ध सामग्री के सम्पादन-प्रकाशन में अकादमी के अनुभवी अधिकारी लगातार सक्रिय रहे हैं। इसी के फलस्वरूप बाहरी सराज की देव परम्परा से सम्बंधित यह पहली पुस्तक प्रस्तुत है। इस योजना की कड़ी में दो अन्य पुस्तकें भी शीघ्र प्रकाशित हो रही हैं; इस आशा और विश्वास के साथ कि यह प्रकाशन संस्कृति प्रेमियों को पसंद आएगा।

प्रस्तावना

लोक विश्वास और देव समाज

डॉ. तुलसी रमण

सचिव, हिमाचल अकादमी

भारतीय ज्ञान परम्परा में लोक तथा वेद का अंतर बराबर स्पष्ट होता रहा है। भगवद्गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं 'अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः।' वास्तव में यहाँ लोक पहले है। लोक के आधार पर ही शास्त्र स्थापित होता है और वह शास्त्र भी फिर से लोक में जा मिलता है। यह प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है। जो शास्त्र में स्पष्ट नहीं हो पाता वह लोक में अपने अर्थ खोलता है और जो शास्त्र में है वह लोक में भी किसी न किसी रूप में रहता ही है। शास्त्र में होने की एक सीमा रहती है, जबकि उसके बाहर जो लोक का संसार है, उसकी कोई सीमा नहीं।

'लोक एक परम्परा के प्रवाह में जीवित रहता है। ऐसे लोक की अभिव्यक्ति में जो तत्त्व मिलते हैं, वे लोकतत्त्व कहलाते हैं।' हमारी लोक परम्परा के इस प्रवाह में लोककथा, लोकगाथा, लोककला और लोकगीत-संगीत जैसी अनेक धाराएँ हैं, जो वास्तव में लोकाभिव्यक्ति की विधाएँ हैं। ये विधाएँ लोक-विश्वास के कंधों पर सुदूर अतीत से चली आ रही हैं। लोक-विश्वास ही अतीत की परम्परा को वर्तमान तक लाता है और भविष्य में उसको विस्तार देता है।

कुल्लू की यह देव परम्परा भी इसी तरह की लोक परम्परा है, जिसमें लोक के कंधों पर देवताओं के रथ समग्र लोकवार्ता और लोकसंगीत की लय में ग्रामीण यात्राओं पर अक्सर दिखाई देते हैं। कुल्लू ही क्यों, हिमाचल प्रदेश के मंडी, महासू, सिरमौर और किन्नौर से लेकर लाहुल-स्पीति व चम्बा आदि क्षेत्रों तक ग्रामीण समाज में लोक-देवताओं का वर्चस्व आज भी कायम है। मगर 'कुल्लू देव परम्परा' इसलिए विशेष है कि इसका ताना-बाना बहुत घना है। यह वास्तव में रघुनाथजी की अध्यक्षता में बने देव संगठन और कुल्लू के दशहरा उत्सव की सदियों पुरानी नियोजित प्रथा से संभव हुआ है। इसी के फलस्वरूप यहाँ पारम्परिक देव-सभा और देव-समाज का अस्तित्व बना है।

'कुल्लू देव परम्परा' के इस सर्वेक्षण और अध्ययन से गुज़रते हुए जो बातें सामने आ रही हैं, वे स्वयं में संश्लिष्ट और जटिल हैं। समय के साथ नये सामाजिक आचार-विचार और कई तरह के अध्ययनों से इसमें तह पर तह जमते जा रहे हैं। इससे कहीं रोशनी के गवाक्ष खुलते हैं तो कुछ भ्रांतियाँ भी पसर जाती हैं। इस देव परम्परा में जहाँ पौराणिक ऋषि लोक देवता के रूप में पूजित हैं, वहीं दूसरी ओर ग्राम-देवताओं की पौराणिक देवताओं के रूप में पहचान के प्रयास भी सामने आते हैं। संभवतः लोक से शास्त्र में प्रवेश करने की कामना से ऐसा होता है। वास्तव में जहाँ ब्रह्मा, विष्णु और शिव भी ग्राम-देवता के रूप में लोक के अभिन्न अंग बन जाते हैं, वहाँ देवी-देवताओं की कथाएँ शास्त्रों में खोजने की ज़रूरत नहीं रह जाती। हमारे यहाँ कुल्लू के महादेऊ और नारायण शास्त्रीय विधान से मुक्त हैं और भरमौर के शिव-पार्वती तो गद्दी-गद्दण के रूप में उतर आते हैं।

कुल्लू के अठारह नागों की वह लोककथा कितनी रोचक है जब वासुकि नाग ने गोशाल गाँव की लोध कन्या से विवाह किया और उनके अठारह नाग-पुत्र हुए। उनकी पूजा करते हुए धड़छ से अंगारे गिरे तो जलकर नाग-पुत्रों के कई रूप हो गए और वे आज भी लोक देवता बनकर उसी रूप में पहचाने जाते हैं। कथा में नाग-पुत्रों की सर्प के रूप में कल्पना कितनी जीवंत और विश्वसनीय हो जाती है, जबकि नाग वास्तव में सर्प नहीं, एक नाग पूजक, शिव भक्त जाति रही है, जिसका गण चिह्न नाग था। इसीलिए नाग देवताओं की प्रतिमाओं के शीर्ष पर सर्प दर्शाये जाते हैं।

अतीत में अनेक नागवंशीय शक्तिशाली राजा हुए हैं। आर्यों और नागों के मध्य सत्ता-संघर्ष के कई उपाख्यान हैं और दूसरी ओर आर्यवीरों के नाग कन्याओं से विवाह के भी प्रसंग हैं। लेकिन भ्रांति का कमाल है कि आगे चलकर नाग जाति की ऐतिहासिक घटनाओं को लोग सर्पकथा के रूप लिख डालते हैं। इसी तरह 'अठारह करडू' कुल्लू के विभिन्न क्षेत्रों के प्रमुख देवता हैं, जो ढालपुर में 'ठारह करडू की सौह' यानी सम्मेलन में अपने-अपने ग्रामाँचल का प्रतिनिधित्व करते हैं। लोक देव परम्परा वाले पहाड़ी क्षेत्रों में प्रमुख देवताओं की गणना अलग होती है। उनकी यह प्रमुखता बड़ी प्रजा और क्षेत्र विस्तार पर आधारित रहती है।

कुल्लू देव-परम्परा की पृष्ठभूमि में देव-दानव का संघर्ष रहा है। निरमंड के 'भूंडा' जैसे लोकानुष्ठानों में इसके साक्ष्य मिलते हैं। मगर यह भी लोक-लीला है कि हिडिम्बा पहले राक्षसी थी और भीम से विवाह करके देवी बन जाती है। कालांतर में वही कुल्लू के देवताओं की दादी हो जाती है। दरअसल हमारे ग्रामीण समाज के सभी देवी-देवता किसानों, पशुपालकों, चरवाहों के पहाड़ी देवता हैं। उनका आचार-व्यवहार भी अपनी प्रजा जैसा रहता है। लोक में कथा रचने और प्रसंग फैलाने की पर्याप्त संभावनाएँ और सुविधाएँ रहती हैं, यही कारण है कि बाहरी सराज के इन देवताओं में अनेक ऐसे हैं जिनके उत्पन्न होने में, अपने थनों से दूध टपकाने वाली गायों का और मंदिर के लिए उचित स्थान ढूँढने में चींटियों का योगदान सर्वाधिक है। इन देवताओं से जुड़ी जनश्रुतियाँ हर गाँव और ग्रामीण समाज की कहानियाँ हैं। वास्तव में निश्छल लोकमानस को अपनी आस्था बाँधने के लिए ऐसा देवता चाहिए, जिससे वह अपना दुख-सुख साझा कर सके। लोगों का दिया धूप-दीप, रोट-प्रसाद और बलि आदि ग्रहण करे। उनके कंधों पर सजे रथ में शोभायमान होकर, उनकी नाटी में नाचे। मेले-त्योहारों और लोकोत्सवों में वे देवता शामिल हों और श्रद्धा से आमंत्रित करने पर जन साधारण के घर पाहुन बनकर भी जाएँ। लोगों को उनसे भय हो और क्रोध आने पर अपने देवता से वे भला-बुरा भी कह सकें और फिर नतमस्तक हो जाएँ। इस लोक-देव-परम्परा का सार कुछ ऐसा ही है।

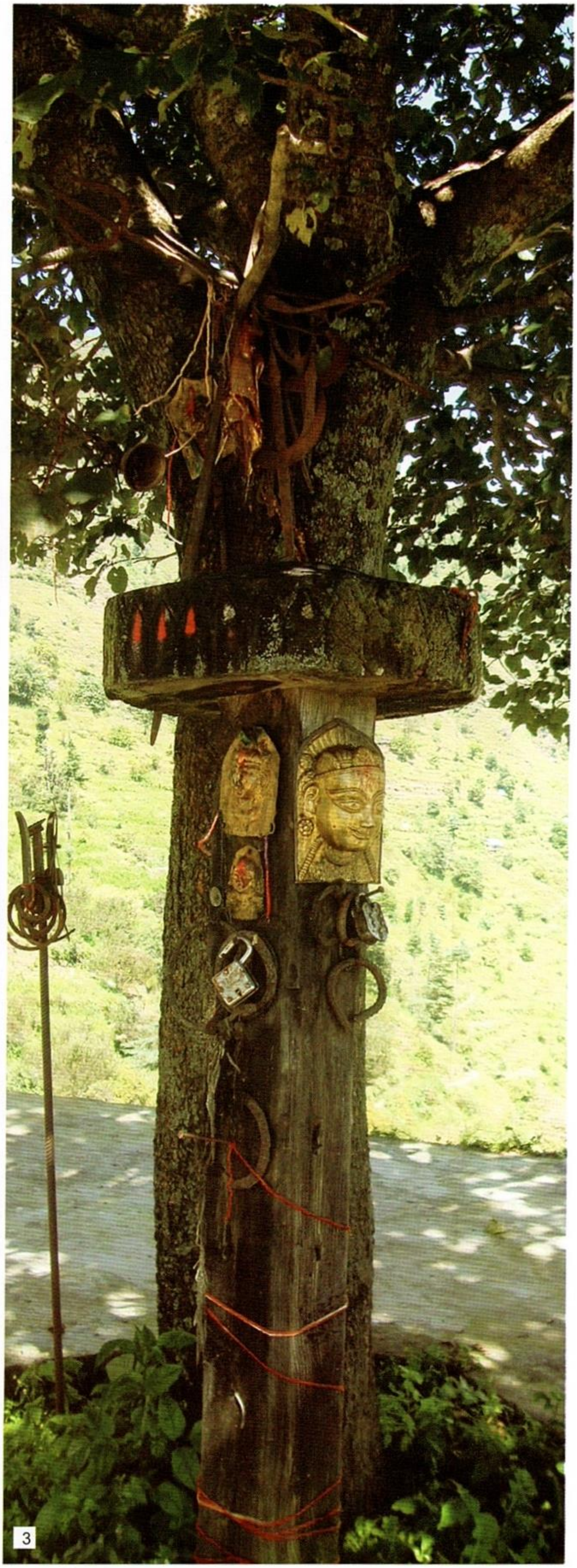
कुल्लू देव परम्परा के शोध-सर्वेक्षण का यह पहला खंड बाहरी सराज क्षेत्र पर केंद्रित है। इसमें शताधिक देवी-देवताओं से सम्बंधित सचित्र जानकारी उन्हीं क्षेत्रों के सुपरिचित व अनुभवी सर्वेक्षकों तथा छायाकारों के माध्यम से एकत्र की गई है। इसमें ग्राम-देवताओं को लेकर जो जनश्रुतियाँ जुटायी गई हैं, वे लोक विश्वासों पर आधारित हैं। ये लोक मानस को व्यक्त करती हैं और हर गाँव की परम्परा-कथा बताने वाली हैं। देवता के मंदिर-स्थापत्य, मूर्तियों और अधिकार क्षेत्र का विवरण भी इसमें शामिल है। पहाड़ों में अधिकांश मेले-त्योहार देवता से जुड़े होते हैं, इसलिये प्रत्येक देवता के मंदिर-प्रांगण या क्षेत्र-विशेष में आयोजित होने वाले मेलों का भी इसमें उल्लेख है। देवताओं की भू-सम्पत्ति तथा कुल्लू दशहरा में सम्मिलित होने की परम्परा के विवरण अंत में दिए गए हैं।

उपायुक्त कुल्लू श्री बी.एम. नाण्टा के साथ ज़िला भाषा अधिकारी डॉ. सीताराम ठाकुर तथा अकादमी के विद्वान सदस्यों श्री एम.आर. ठाकुर व प्रो. वरयाम सिंह जैसे अनेक स्थानिक लोगों का परामर्श और सहयोग इसमें रहा है। अकादमी के अनुसंधान अधिकारी श्री रमेश जसरोटिया, डॉ. श्यामा वर्मा और सुश्री सूनृता गौतम इस कार्य में मेहनत और समझ के साथ सक्रिय रहे हैं और अकादमी के अधिकांश स्टाफ का भी इसमें सहयोग है।

लोकपक्ष से एकत्रित सूचनाओं के शत-प्रतिशत सही होने का दावा नहीं किया जा सकता। अतः इसमें जो कमी या त्रुटि रही होगी, उसका आगामी खंड में सुधार किया जाएगा। इसलिए जानकार लोगों से सूचित करने तथा प्रतिक्रिया देने के लिए अनुरोध रहेगा। इस सर्वेक्षण के कुल्लू-मनाली तथा बंजार आदि क्षेत्रों से सम्बंधित खंड भी शीघ्र प्रकाशित होंगे। आशा है इसके प्रकाश में आने से संस्कृति के विभिन्न पक्षों को समझने में मदद मिलेगी।

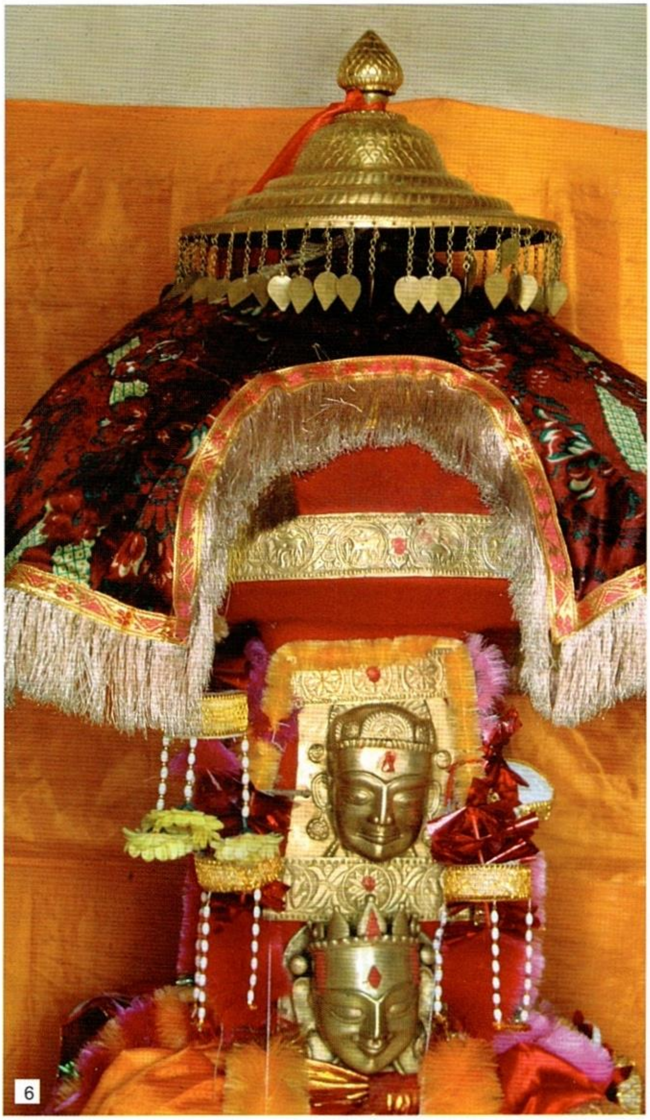

1


2


3

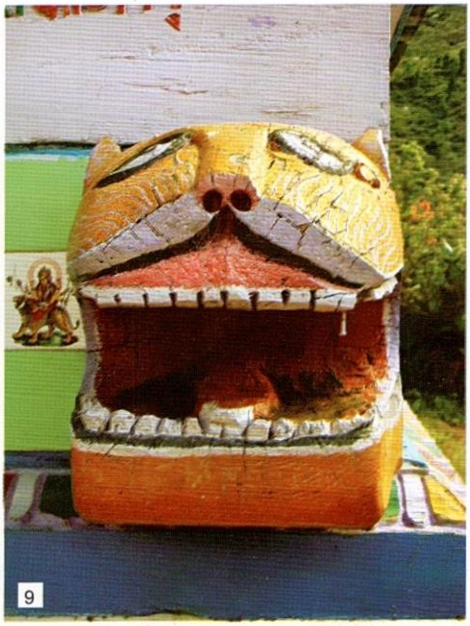

4


5


6


7


8


9



देवदर्शन : फाटो फीचर : 1

1. शमशरी महादेव, आनी का सज्जित रथ; 2. परशुराम प्रतिमा, निरमंड; 3. वृक्ष और देवता शमाण, शलाट एक साथ; 4. चलासनी देवी, जाओं का कलापूर्ण द्वार एवं प्रतिमा; 5. जोगेश्वर महादेव, दलाश, आनी का मंदिर; 6. छेंजणू देव, कलारस, निरमंड का रथ; 7. भैरो देवता, चौका, आनी का रथ; 8. जांजा जल देवता, कुई, आनी का देव-कड़ाह; 9. चलासनी देवी मंदिर, जाओं का काष्ठ सिहं-मुख; 10. परशुराम कोठी, निरमंड का बाहरी दृश्य

सर्वेक्षण परामर्श

श्री एम.आर. ठाकुर, सदस्य अकादमी, कुल्लू।
प्रो. वरयाम सिंह, सदस्य अकादमी, बंजार।
डॉ. सीता राम ठाकुर, ज़िला भाषा अधिकारी, ज़िला कुल्लू।
श्री नरोत्तम नेगी, प्रधान, देवी-देवता कारदार संघ, ज़िला कुल्लू।

सर्वेक्षक : निरमंड खंड

1. **श्री दीपक शर्मा**, निरमंड

देवता-मंदिर : माँ अंबिका-निरमंड, कुई कंडा नाग-घाटू, चंभू कशोलड़-कशोली, चंभू सनगेसर- देउगी, श्री चंडी माता-निरमंड, चजाई नाग-शरशाह, डौंडू देवता-ठारवा, दक्षिणी महादेव-निरमंड, द्यानूओ देऊ-सकीरन कंडा, दशनामी अखाड़ा-निरमंड, धनेश्वरी माता-धनाह, नातली नाग-कंडी, नातली नाग-रामगढ़, नारसिंह देवता-सूमा, पंज वीर-ढौल़, परशुराम-निरमंड, बना देऊ-निरमंड, बूढ़ा महादेव-निथर, बौड़ो देऊ-निरमंड, भडराई नाग-ढाढसा, चेवड़ी माता-चेवड़ी, मड़ेहलू देऊ-भदराल, माही नाग-ओली नाल़, रखाऊ नाग-धनाह, लक्ष्मी नारायण-निरमंड, लटासण देवी-दुराह, लोहड़ी नाग-कतमोर, विष्णु देऊ-पुजारली, शक्त ऋषि-थंथल, सरमासणी देवी-पुजारली, सराजी देऊ-शमारनी।

2. **श्री दुर्गा सिंह**, धार

देवता-मंदिर : चंभू चकेश्वर-रंदल, जाहरू नाग-खरगा, झाकड़ू नाग-कुसुम्भा, झाकड़ू नाग-धार, दमासन देवी-कुशवा, नातली नाग-बाहवा।

3. **श्री मोहर सिंह ठाकुर**, टिकरी कैंची

देवता-मंदिर : चलासनी देवी-जाओं, छैंजणू देव-कलारस, जमलू देव-झलैर, जलांडी ऋषि-सराहन, भढारलू देव-कोट, मारकंडा ऋषि-नोर, मारकंडा ऋषि-शलाट, मारकंडा ऋषि-ईशवा, राय नाग-देथवा, रियासी नाग-ढलैर।

4. **श्री विक्रांत शर्मा**, निरमंड

देवता-मंदिर : कलासण देवी-कोयल, कशैलड़ू-बायल, चंभू द्रोपू-द्रोपा, जमलू देऊ-बशला, डगेणी माता-डगेणी, ढाँक देव-देवढाँक, नगेला देव-डमैहड़ी, बड़ासन देवी-बाड़ी।

सर्वेक्षक : आनी खंड

1. श्री चमन शर्मा, शमेशा

देवता-मंदिर : कुई कंडा नाग-शगोगी, चलोली मशाण-चलोली, शेषनाग-बिशल, व्यास ऋषि-कुंईर, भैरो देवता-चौका।

2. श्री छविन्द्र शर्मा, आनी

देवता-मंदिर : कुई कंडा नाग-तांदी, काली नाग-लढागी, कुलक्षेत्र महादेव- ओलवा, कुसुंबा माता-खेगसू, जोगेश्वर महादेव-दलाश, बाड़ी दुर्गा-बाड़ी, बैहनी महादेव-बैहना, शाणी दुर्गा-शाणी।

3. श्री फौजी लाल शर्मा, देहुरी

देवता-मंदिर : खुडीजल देवता-देहुरी, खोलू देवता-देहुरी, जमलू देवता-जुहड़, नारायण देवता-फनौटी, राई थाची-कोट, लक्ष्मी नारायण-करशाला, सुरगसीन नाग-बालू।

4. श्री महेन्द्र कायथ, तराला

देवता-मंदिर : काली माता-परकौट, गड़ूमी नाग-कुटवा, गड़ूमी नाग-शगागी, चजाई नाग-खादवी, जमलू देवता-शौहण, तराली नाग-तराला, द्रशौणी देवता- डीम, नारायण देवता-चौकी, नारायण देवता-बनास, बूढ़ी नागिन-कनाला, भझारी देवता-कोट, मुरलीधर-बटाला, व्यास ऋषि-कुंईर, सराजपाल-जाओं, सराजपाल-पाली, सरीणी देवता-लफाली, सैन्नी देवता-गागणी।

5. श्री यशपाल ठाकुर, चाहवी

देवता-मंदिर : खलगाड़ी देवता-करोट, छैंजणू देवता-निंगलू, जाँजा जल देवता- कुई, झाकड़ू नाग-टिप्पर, टकरासी नाग-ठारवी, नागणी माता-रोपा, बशावली नारायण-पकरेड़।

6. श्री शिवराज शर्मा, आनी

देवता-मंदिर : चजाई नाग-डौहवी, जल देवता-धार, दराडू देवता-खोई, दुर्गा देवी-आनी, केदारनाथ-गुहांटी, पच्छला देवी-देहुरी, लक्ष्मी नारायण (ठाकुर)-डौहवी, विष्णु नारायण-कुटवा, शमशरी महादेव-शमशर, सराजपाल-धामणी।

7. श्री हरिकृष्ण शर्मा, कराणा

देवता-मंदिर : कुंगशी महादेव-कुंगश, पटारनी नाग-पटारना, पनेउई नाग-पनेऊ, विननी महादेव-बिनन, शमशरी महादेव-कराणा।

छायाकार : **चमन शर्मा**, आनी

सर्वेक्षण संयोजन प्रभारी

रमेश जसरोटिया

अनुसंधान अधिकारी, हिमाचल अकादमी।

निरमंड खंड

अंबिका माता

गाँव व तहसील : निरमंड।

मूल स्थान, मंदिर व भंडार : निरमंड।



स्थापत्य : काठकुणी शैली में निर्मित एक मंज़िल का कलात्मक मंदिर है, जिसके चारों ओर किलाबंदी की गई है। यह मंदिर लगभग 700 वर्ष पुराना है। इसकी छत ताम्रपत्रों की और फर्श संगमरमर से जड़ा है। छत के 'कुरड़' के मध्य में अष्टदल कमल की आकृति का एक ताम्रकलश लगा है और दोनों किनारों पर दो हरिण मूर्तियाँ हैं। मंदिर के चारों ओर प्रस्तर निर्मित परिक्रमा-पथ है। परिसर का विशाल द्वार तराशे पत्थरों का बना है, जिसमें काष्ठ के मज़बूत पट लगे हैं। मुख्यद्वार सिंह-युगल तथा देवी-देवताओं से सज्जित है। द्वार के अंदर प्रस्तर पर माता के चरण अंकित हैं, साथ ही लगभग सौ किलो का भारी घंटा है। मुख्य द्वार के दोनों ओर आवास कक्ष हैं।

अधिकार क्षेत्र : गाँव निरमंड, रलू, सुनैर, निशानी, मातला, मरैहड़ी, कथांडा, पुजारली, भालसी, खैर, घाटू, उर्टू, देउगी, बुछैर, कोयल, बायल, ध्वांश, डावर।

प्रबंध : कारदारी अध्यक्षता में समिति।

न्याय प्रणाली : गाँव के प्रबुद्ध वरिष्ठ नागरिकों की एक सभा के समक्ष कोई भी व्यक्ति न्याय के लिए अपना पक्ष रख सकता है। प्रायः इस न्याय-सभा का निर्णय अंतिम माना जाता है, परन्तु यदि किसी व्यक्ति को इस पर संशय हो तो देव-दरबार में जा सकता है। वहाँ गूर के माध्यम से देवी अपना निर्णय सुनाती है। सज़ा के रूप में सामान्यतः बहिष्कार किया जाता है।

पूजा : माँ अंबिका की पूजा चार चरणों में होती है। प्रथम चरण में देवी का पुजारी ब्राह्ममुहूर्त में उठकर 'बौरजा की बावली' में स्नान करके वहाँ से पानी लाकर देवी की प्रतिमा को स्नान कराता है। फिर सरसों का तेल लगा कर तथा सभी वस्त्र-आभूषण पहना कर एक हाथ में धूप, पुष्प, केसर, अक्षत से युक्त पूजा की थाली लेकर तथा दूसरे हाथ से टिणमिणी यानी घंटी बजाते हुए पूजा करता है। इस समय गर्भगृह का द्वार बंद रहता है। इसके बाद पुजारी पूजा की थाली लेकर मंदिर के मुख्यद्वार पर जा कर 'प्रौउल पूजा' करके मंदिर परिसर में स्थापित सभी प्रतिमाओं की पूजा करता है। द्वितीय चरण से लेकर चतुर्थ चरण तक की पूजा में लगभग डेढ़ घड़ी (तीस से चालीस मिनट) का समय लगता है। द्वितीय चरण की पूजा दूसरे पहर (प्रातः 9.30-10 बजे) आरम्भ होती है। इस समय पुजारी दायें हाथ में धनेरा (धूप पात्र) व बायें हाथ में घंटी के साथ मुख्यद्वार के पास प्रतिष्ठापित माँ के चरणों के समीप पूजा करने के पश्चात् गर्भगृह में जाकर पूजा करता है। तीसरे चरण में धूप-दीप, चौर-मुट्ठा व मोर-मुट्ठा के साथ आरती उतारी जाती है। चतुर्थ चरण में हलवा-पूरी या कसार (चूरमा) की थाली माँ के सामने रखी जाती है। माँ

को अर्घ्य दिया जाता है। इसके बाद पुजारी दस-बारह पलों के लिए बाहर निकलता है और गर्भगृह का द्वार बंद कर देता है। मान्यतानुसार इस अवधि में माँ भोग ग्रहण करती है। निश्चित अवधि समाप्त होने के बाद पुजारी पुनः गर्भगृह में प्रवेश कर अर्घ्य देता है। इसके बाद प्रसाद बाँटा जाता है।

रथ : नहीं है। इसके स्थान पर कलश है।

मेले-त्योहार : चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को पत्री बखाण, 9-10 वैशाख को मेला निरशू, ज्येष्ठ की संक्रांति को बिरशू, आश्विन शुक्ल अष्टमी को मुणुआ, मार्गशीर्ष की अमावस्या व शुक्ल प्रतिपदा को बूढ़ी दियाउड़ी, मकर संक्रांति को 'घृतमा', भाद्रपद शुक्ल षष्ठी से नवमी तक कावछठ।

जनश्रुति : लोक विश्वास के अनुसार सतयुग के पूर्वार्द्ध कालखंड में दैत्यों ने हिमालय की कंदराओं में अजगरों के रूप में आतंक फैला रखा था। उन्हीं दिनों जब परशुराम निरमंड आए तो एक विशालकाय नाग ने उन पर आक्रमण किया। परशुराम ने उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिए। उन्होंने कुल्हाड़े से अनगिनत दैत्य मारे, परन्तु दैत्यों का सम्पूर्ण नाश नहीं हो पाया। तब सभी देवता भगवान विष्णु की शरण में गए।

विष्णु ने दैत्यों से मुक्ति के लिए देवी से प्रार्थना करने को कहा। सभी देवताओं ने महाकाली की स्तुति की। तब महाकाली खप्पर, त्रिशूल, खड्ग सहित प्रकट हुई और दानवों को मारने लगी, परन्तु दानव के रक्त की जितनी बूँदें गिरतीं, उतने ही दानव और पैदा हो जाते। देवी क्रोध में काँपने लगी, जिससे उनके बालों से कालियाँ उत्पन्न हुई। देवी ने जाहरू नाग का भी आह्वान किया। तब जाहरू नाग व कालियों ने दानवों का रक्त भूमि पर गिरने से पहले ही चाट लिया। इस प्रकार दानवों का नाश हो गया। तब माँ अपने सौम्य रूप में आ गई। इस घटना के बाद लोगों ने यहाँ माँ के मंदिर का निर्माण किया। इस कथा का वर्णन स्थानीय बोली में निम्न प्रकार से किया गया है



सौरगै चुड़ी, पौड़ी चुड़ी, गै देविए दुर्गे माइए
बोला विष्णु नरैणा व माए देविए दुर्गे माइए
तेरा नाओ लैऊं पैहलै, देविए दुर्गे माइए
देशे दानवें ध्वाए माए, देविए दुर्गे माइए
कौरे ईना दानियों संघारा माए, देविए दुर्गे माइए
तौलै भौउणा बणावीं माए, देविए दुर्गे माइए
चांदी ए शीला कै छैंऊ माए, देविए दुर्गे माइए
हाथै खांडौ चाकौ खौपरा गै, देविए दुर्गे माइए
दानवे छेदणें लाए माए, देविए दुर्गे माइए
गौला गौलिए डुबी माए, देविए दुर्गे माइए
दानवे छेदी भिना मुंके माए, देविए दुर्गे माइए
नागा ज़ाहरू बदावा माए, देविए दुर्गे माइए।

माता अंबिका की निरमंड में उत्पत्ति के सम्बंध में एक अन्य किंवदंती है कि जब दक्ष प्रजापति ने यज्ञोत्सव में भगवान शिव को आमंत्रित नहीं किया तो सती हठ करके स्वयं यज्ञशाला में चली गई। वहाँ पर अपने पति का

आसन न देख वह क्रोधावेश में यज्ञ कुंड में कूद गई। भगवान शिव को जब इस बात का पता चला तो वह यज्ञशाला में आकर सती के शव को त्रिशूल पर उठाकर दुःख से संतप्त सारे ब्रह्मांड में घूमने लगे। उनकी यह दशा देखकर भगवान विष्णु ने अपने सुदर्शन चक्र से सती के शरीर के खंड-खंड कर दिए। जहाँ-जहाँ सती के अंग गिरे वे स्थान शक्ति स्थल कहलाये। स्थानीय लोगों का मानना है कि निरमंड में सती का शीश गिरा था अतः कालांतर में लोगों ने यहाँ माँ अंबिका का मंदिर बना दिया।

कलासण देवी

गाँव : कोयल, तहसील : निरमंड।

मूल स्थान, मंदिर व भंडार : कोयल।

स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर निर्मित एक कक्ष का मंदिर लगभग 20 वर्ष पुराना है, जिसकी छत ढलानदार है।



अधिकार क्षेत्र : गाँव कोयल, बायल, डवारच, तिरमीधार तथा समस्त गड़ेज घाटी।

प्रबंध : कारदार द्वारा।

न्याय प्रणाली : माँ अंबिका की न्याय प्रणाली पर आधारित विधि है।

पूजा : प्रातः-सायं धूप-दीप से।

मोहरे : कुल ग्यारह।

मेले-त्योहार : 7 वैशाख को प्रतिवर्ष मांडवा मेला, मकर संक्रांति को गिंदू उत्सव।

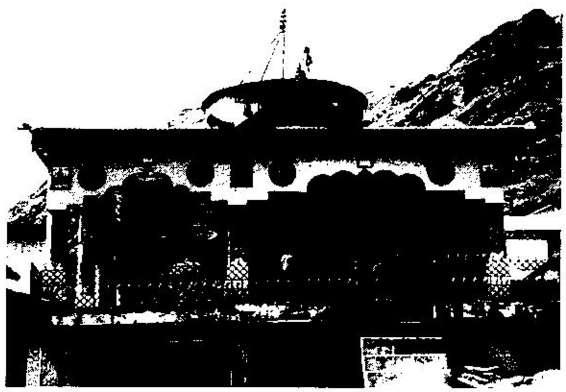
जनश्रुति : कलासण देवी बाड़ाकुई से उत्पन्न हुए चार चम्भुओं और सात भराड़ियों (बहनों) में सबसे छोटी बहन है। देवी अंबिका के वरदान से उत्पन्न इन ग्यारह भाई-बहनों को देवी ने अपने लिए योग्य स्थान चुनने को कहा तो देवी कलासण ने स्वयं के निवास हेतु कोयल नामक गाँव को चुना और वहाँ के लोगों को कई तरह के चमत्कार दिखाकर प्रभावित किया। इससे देवी की मान्यता बढ़ी और बाद में देवी की स्थापना हेतु मंदिर का निर्माण किया गया।

कशैलडू देव

गाँव : बायल, तहसील : निरमंड।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : बायल।

शाखा मंदिर : बायल गाँव से बाहर।



स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर निर्मित दो मंज़िल का मंदिर जिसकी सपाट छत के मध्य में छत्र बना है।

अधिकार क्षेत्र : गाँव बायल।

न्याय प्रणाली : गाँव के विशिष्ट व्यक्तियों के माध्यम से।

पूजा : प्रातः-सायं जड़ी धूप से।

रथ : आधार चौरस, ऊपर की ओर तिरछा।

मोहरे : बाईस।

मेले-त्योहार : 8 वैशाख को मांडवा मेला।

जनश्रुति : जब शिवजी देवढांक में रहने लगे तो उनके नंदी (गण) ने पास के काश वन को अपना निवास

बनाया। शिवजी के नंदी का निवास स्थान होने से उस जगह का नाम बायल पड़ा। काश के बीच में रहने से यह कशैलडू देव कहलाया।

कुई कंडा नाग

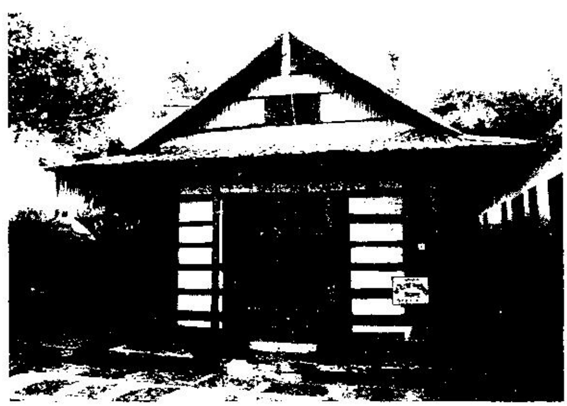
गाँव : घाटू, तहसील : निरमंड।
मूल स्थान : कुई कंडा।
मंदिर एवं भंडार : घाटू।



स्थापत्य : काष्ठ व प्रस्तर निर्मित पैगोडा शैली के पुरातन मंदिर का लगभग छह वर्ष पूर्व जीर्णोद्धार हुआ है, जिससे इसका प्राचीन स्वरूप बदल गया है। स्लेटों से आच्छादित छत के शिखर पर कुरड़ स्थापित है। गर्भगृह की बाहरी दीवारों तथा फर्श पर टायलें लगाई गई हैं।
अधिकार क्षेत्र : घाटू पंचायत।
प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में समिति।
न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।
पूजा : प्रातः-सायं जड़ी धूप से।
रथ : चिड़ी शैली।
मोहरे : ग्यारह।
मेले-त्योहार : 3 आश्विन को शैरी मेला।
जनश्रुति : घटना लगभग 4000 वर्ष पूर्व की बताई जाती है। निरमंड के शरशाह, मरगी, कठेड़, कटाहर, नौहनू, कंडा, कतमोर, लढागी, बुछैर क्षेत्रों में 'माण-मरेछों' का आधिपत्य था। वे दैत्याकार लोग थे और किसी भी देवी-देवता को नहीं मानते थे। उनमें एक शूपण नामक राक्षसी थी। वह अपनी मायावी शक्ति द्वारा अपने शरीर को अतिसूक्ष्म और विशालतम बना सकती थी। वह देवताओं को तंग करती रहती थी और उनसे अभद्र व्यवहार करती थी। एक बार देवता चंभू उरटू, चजाई नाग और कुई कंडा नाग ने उसे मारने की योजना बनाई। शूपण को जब इस बात का पता चला तो उसने इतना विशाल रूप धारण किया कि उसका सिर चनाच गाँव में, मध्य भाग वहाँ से एक किलोमीटर दूर देउरीधार में तथा पैर तीन किलोमीटर दूर घाटू गाँव में पड़े। तब चजाई नाग ने उसे सिर से मरोड़ा, चंभू उरटू उसकी छाती पर बैठ गया तथा कुई कंडा नाग ने उसे पाँव से पकड़ कर पटक दिया। इस प्रकार तीनों देवताओं ने मिलकर उसका अंत कर दिया। आज चनाच में चजाई नाग की 'ठहरी', देउरी-धार में चंभू देवता का मंदिर तथा घाटू में कुई कंडा नाग का मंदिर एवं भंडार है।

चंडी देवी

गाँव व तहसील : निरमंड।
मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : निरमंड के सुहाणा मुहल्ला में।
स्थापत्य : काष्ठ और प्रस्तर निर्मित एक मंज़िल का यह मंदिर लगभग 400 वर्ष पुराना है। इसकी ढलवाँ छत पर



लकड़ी का कुरड़ लगा है और उसके मध्य में कलश स्थापित है। मुरम्मत के बाद इस मंदिर पर चादरों की छत लगाई गई है, जिसके चारों ओर काष्ठ-झालरें हैं। मंदिर परिसर में अनेक प्रस्तर-स्तम्भ तथा एक लघु देवालय में शिवलिंग स्थापित है और द्वार पर नंदी की सुंदर प्रस्तर प्रतिमा है। गर्भगृह में चंडी देवी की चतुर्भुज पाषाण-मूर्ति है। इसके काष्ठ-द्वार पर कलात्मक चित्रकारी की गई है। मंदिर परिसर में कई प्रस्तर प्रतिमाएँ भी हैं।

अधिकार क्षेत्र : निरमंड।

प्रबंध : स्थानीय लोगों की समिति।

न्याय प्रणाली : देवी अंबिका की न्याय प्रणाली ही है।

पूजा : प्रातः-सायं गुग्गुल व जड़ी धूप से।

रथ : चौरस आधार तथा शिखर की ओर तिरछा, जो केवल 'कावछठ' मेले के दौरान ही निकलता है।

मोहरे : चंडी, शिव तथा काली के आठ मोहरे।

मेले-त्योहार : *कावछठ*-ऋषि पंचमी के दिन जब परशुराम ने 40 हज़ार योद्धाओं को मार कर सहस्रबाहु पर विजय प्राप्त की तो इसकी सूचना ऋषियों को षष्ठी के दिन कौए के माध्यम से मिली। इसलिए यह मेला भाद्रपद शुक्ल षष्ठी को मनाया जाता है। इसमें बनादेव, चंडीदेवी, चंडियो चंडेल, दक्षिणी महादेव, देवी अंबिका और चंभू द्रोपू भाग लेते हैं। यह मेला 'बिले शनाए' नामक स्थान पर लगता है और विश्वेश्वर महादेव को इसका प्रमुख माना जाता है। मेला आरम्भ होने से पहले दिन सभी देव-रथों को उनकी कोठियों के पास वस्त्राभूषणों व मोहरों से सजाते हैं, फिर वाद्ययंत्रों की ध्वनि पर रथों को नचाया जाता है। तब गूर 'छेरते' हुए देवता की 'भारथा' सुनाता है। रात को सभी देवताओं के पास लोकवाद्य के साथ 'छाहड़ी' गायी जाती है। 'कावछठ' के दिन इन्हें भाद्रपद कृष्ण द्वादशी को बोयी गई जरियों (घड़े के भीतर गोबर-मिट्टी डालकर अँधेरे में बोये गए जौ, जिनकी फूटी कोंपलें पीले रंग की होती हैं) और फूल-मालाओं से सजाते हैं। उसके बाद सभी बिले शनाए स्थान में एकत्र होते हैं। तब अपने-अपने वाद्यों की धुन के साथ ये देवता खूब नाचते हैं। इसके बाद ढेंकुली, वंशी, ढोल आदि वाद्यों के साथ छाहड़ी गायन के बीच देवता को धीरे-धीरे नचाया जाता है। तत्पश्चात् लोग नाटी नृत्य करते हैं। अन्त में दौड़ लगाकर देवता अपने-अपने 'देवरे' में चले जाते हैं।

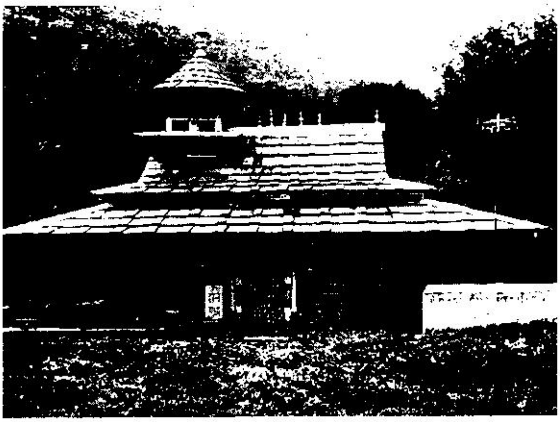
जनश्रुति : भूंडा महायज्ञ की समाप्ति के बाद कश्यप गोत्रीय ब्राह्मणों को बसने के लिए परशुराम जी ने निरमंड में जो स्थान दिया, वह सुहाणा मुहल्ला के नाम से जाना जाता है। यहाँ बसने के बाद उन्होंने अपनी इष्ट देवी चंडी का आह्वान कर उसकी स्थापना की।

चंभू कशोलड़

गाँव : कशोली, तहसील : निरमंड।

मूल स्थान मंदिर एवं भंडार : कशोली।

शाखा मंदिर : पाली, थाचवा, पाथरो थाच, कंडा।



स्थापत्य : एक मंज़िल के इस मंदिर का जीर्णोद्धार लगभग 50 वर्ष पूर्व हुआ है। प्रस्तर और लकड़ी की चिनाई में यह काठकुणी शैली में निर्मित मंदिर है जिसके दो कक्ष हैं। गर्भगृह में मूर्तियाँ स्थापित हैं तथा बाहर के कक्ष में हवन-कुंड है। मंदिर के मुख्य द्वार के साथ पाँच पाषाण स्तंभ पाँच वीरों के रूप में स्थापित हैं, साथ ही भैरव की प्रस्तर प्रतिमा है।

अधिकार क्षेत्र : गाँव बाड़ी, पाली डमैहड़ी, पांकवा,

प्रंतला, कशोली, बूंग, खदेच, शोहच, पोशना, थाचवा, मरैहड़ी तथा ठांस।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।

पूजा : दोनों समय, स्थानीय जड़ी-धूप से।

रथ : चौरस आधार, शिखर की ओर तिरछा, मुख्य मोहरे के सिर पर सफेद पगड़ी व चाँदी की आरशी सुसज्जित।

मोहरे : मुख्य देव व भैरव, लाटा, बणशीरा, दानिया, चंभू चकेश्वर के अतिरिक्त अन्य पाँच मोहरे।

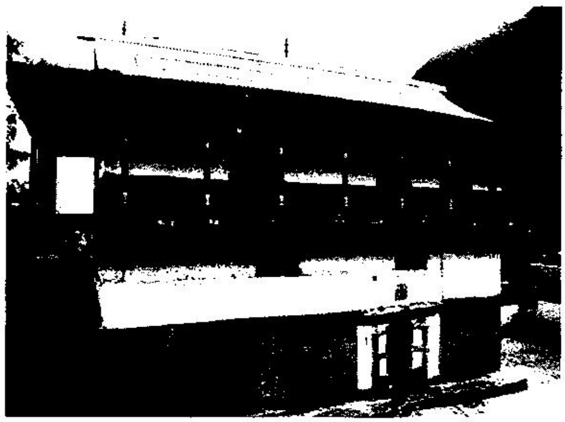
मेले-त्योहार : ज्येष्ठ मास की संक्रांति को बिरशी, श्रावण मास में बारह गाँवों की यात्रा, मार्गशीर्ष की अमावस्या को दयाउड़ी, पौष पूर्णिमा को पर्व चौदश, फाल्गुन संक्रांति की अमावस्या को गड़ाई, माघ संक्रांति को 'घृतमा' तथा हर तीसरे वर्ष बड़ी पूजा।

जनश्रुति : बाड़ा कुई नामक जल-कुंड से देवी अंबिका की कृपा से उत्पन्न चार देवता जिन्हें चंभू कहा गया, जब देवी से अपने लिए स्थान माँगने लगे तो माँ ने उन्हें आदेश दिया कि वे सबसे पहले निरमंड क्षेत्र के चार अत्याचारी राणाओं का वध करें, उसके बाद ही उन्हें रहने के लिए स्थान दिया जाएगा। यह सुनकर सबसे छोटे को छोड़कर अन्य तीनों चंभू साधु का रूप धारण कर वहाँ से निकल पड़े और थाचवी नामक स्थान में पहुँचकर वहाँ के राणा से भीख माँगने लगे। राणा ने उन्हें 'डेंठी' कहकर भीख देने से इनकार कर दिया तो तीनों चंभुओं ने राणा और उसके सभी पुत्रों को मार डाला और आगे चल पड़े। कुछ दूर जाने के बाद एक स्थान पर उन्हें ज़ाहरू नाग मिला। ज़ाहरू ने उन्हें अपने अधिकार-क्षेत्र की सीमा बताते हुए आगे जाने को कहा। कुछ दूरी पर उन्हें मार्ग में झाकड़ू नाग मिला। झाकड़ू नाग ने भी उनसे कहा कि यह उसका क्षेत्र है जिसे वह नहीं छोड़ेगा। तब तीनों चंभू वहाँ से आगे चलते हुए जानवी नामक स्थान में पहुँचे जहाँ चनाड़ू राणा का राज था। यह राणा अपनी प्रजा के साथ बहुत दुर्व्यवहार करता था। चंभुओं ने इस राणा को भी मार दिया और आगे निकल पड़े। चलते-चलते वे बूंग नामक गाँव में पहुँचे। वहाँ के डाडू नाम के राणा को मारकर कशोली पहुँचे। तीनों चंभुओं में से एक को यह स्थान प्रिय लगा और वह वहाँ रहकर लोगों को चमत्कार दिखाने लगा। उससे प्रभावित होकर लोगों ने देवता के लिए काठकुणी शैली में मंदिर का निर्माण किया। कशोली गाँव में वह कशोलड़ नाम से पूजा जाने लगा।

चंभू चकेश्वर

गाँव : रंदल, तहसील : निरमंड।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : रंदल।



स्थापत्य : प्रस्तर व काष्ठ से निर्मित दो मंज़िल का यह मंदिर लगभग 100 वर्ष पुराना है। टीन की ढलानदार छत पर कुरड़ तथा कलश है। काष्ठ द्वार चित्रकला से सज्जित है।

शाखा मंदिर : रल्लू, कंडाधार।

अधिकार क्षेत्र : फाटी पोशना।

प्रबंध : कारदारी अध्यक्षता में समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से पर्ची डालकर या 'कारी' विधि द्वारा।

पूजा : प्रातः-सायं दीप तथा गुग्गुल धूप से।

रथ : आधार चौरस, ऊपर की ओर तिरछा।

मोहरे : कुल बीस।

मेले-त्योहार : फाल्गुन संक्रांति को गड़ाई पर्व, चैत्र व

आश्विन के नवरात्र, 5 वैशाख को मेला निरशू, भूंडा, जग और पजौता।

जनश्रुति : बाड़ाकुई से उत्पन्न चार चंभुओं को जब देवी अंबिका ने अपने-अपने स्थान का चयन करने के लिए भेजा तो चंभू चकेश्वर निरमंड की चार ठहरियों शिंगड़ा, शनेरी, लाड़सा व डनसा की यात्रा करने के पश्चात् शिंगड़ा गाँव के पीछे ग्वांडीधार पहुँचा। मार्ग में मेहा, बनौड़, टिकरा और टापरा गाँवों के दुष्ट शासकों का वध करने के पश्चात् देवता रंदल गाँव के बाहर एक बड़ी झाड़ी के पास पिंडी का रूप धारण कर स्थापित हो गया। रंदल गाँव का एक ब्राह्मण इस स्थान पर प्रतिदिन अपनी गायें चराने आया करता था। कुछ समय बाद उसकी एक गाय ने शाम को दूध देना बंद कर दिया। इस बात से चिंतित ब्राह्मण ने एक दिन गाय का पीछा किया तो देखा कि एक झाड़ी के पास गाय के स्तनों से स्वतः दूध की धारा बह रही है। वापिस आकर उसने यह बात गाँववालों को बताई। तब उस स्थान की खुदाई करने पर एक पिंडी निकली जो चंभू चकेश्वर की थी। वहीं लोगों ने मंदिर का निर्माण किया।

चंभू द्रोपू

गाँव : द्रोपा, तहसील : निरमंड।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : द्रोपा।



शाखा मंदिर : शिशुवी कोठी।

स्थापत्य : एक मंज़िल का यह मंदिर काष्ठ-प्रस्तर निर्मित है। इसके फर्श पर गोबर-मिट्टी का लेप है। मंदिर के गर्भगृह के बाहर एक खुला कक्ष है।

अधिकार क्षेत्र : गाँव निरमंड, कोयल, बायल।

प्रबंध : गूर, कारदार, पुजारी आदि के माध्यम से।

पूजा : दोनों समय स्थानीय जड़ी धूप से।

रथ : आधार चौरस तथा शिखर की ओर तिरछा। निरमंड तहसील में इस देवता का रथ सबसे बड़ा व भारी माना जाता है।

मोहरे : तेरह, मुख्य देव का एक मोहरा, बेज़ो मशाण, लाटो मशाण, आलो मशाण के तीन मोहरे तथा ग्रहों के नौ।

मेले-त्योहार : चैत्र व आश्विन नवरात्रों की सप्तमी-अष्टमी को विशेष पूजा, आठ वैशाख को मेला मांडवा, नौ-दस वैशाख को निरशू मेला निरमंड।

जनश्रुति : कलियुग के प्रारम्भिक चरण में देवी को निरमंड से कुछ दूरी पर स्थित बाड़ा-कुई नामक जलकुंड में दीपक की तरह टिमटिमाते पानी के बुलबुले दिखाई दिए। देवी ने एक-एक करके बुलबुले हाथ में उठाए जो बारी-बारी से फटते गए और उनमें से चार देवता और सात देवियाँ उत्पन्न हुईं। देवी ने इन्हें पराक्रमी कहते हुए कहीं भी स्थान ग्रहण करने को कहा। इनमें से सबसे छोटा भाई माँ के आँगन में आकर रोने लगा और बोला 'मुझे रहने के लिए ऐसा स्थान चाहिए जहाँ पानी की कमी न हो और नाचने, खेलने के लिए खुला मैदान हो तथा मेरी पूजा करनेवाली प्रजा भी हो।' तब देवी अंबिका ने उसे सतलुज और नैनगंगा के संगम स्थल पर द्रोपा नामक स्थान दिया जहाँ पानी की कमी नहीं थी, नाचने-खेलने के लिए भी वहाँ से कुछ दूरी पर मांडवा नामक स्थान था तथा उसकी प्रजा-रूप में कोयल और बायल गाँवों के लोग थे।

माँ के आदेश के अनुसार बालक रूपी देवता द्रोपा की ओर चल पड़ा। चलते-चलते वह एक टीले पर पहुँच गया, परन्तु आगे का रास्ता भूल गया। वह टीले पर बैठ

कर रोने लगा। अचानक द्रोपा गाँव का एक व्यक्ति वहाँ पहुँचा। उसने बालक से रोने का कारण पूछा। बालक ने बताया कि वह द्रोपा गाँव का रास्ता भूल गया है। तब उस व्यक्ति ने अपनी पीठ पर उठाए किलटे में बालक को बैठाया और आगे चल पड़ा। बायल की कुल्ह के पास पहुँचकर उसने पानी पीने के लिए पीठ से किलटा उतारा तो बालक तुरंत लुप्त हो गया और उस स्थान पर एक पिंडी उत्पन्न हुई। पानी पीने के बाद वह व्यक्ति चलने लगा तो देवता पुनः बालक रूप धारण कर किलटे में आकर बैठ गया। द्रोपा गाँव पहुँचकर वह पुनः लुप्त हो गया और पिंडी रूप में फिर प्रकट हो गया। देवता ने स्वप्न में उस व्यक्ति को मंदिर बनाने का आदेश दिया। लोगों ने वहाँ काठ-कुणी शैली में एक मंज़िल के मंदिर का निर्माण कर उसके गर्भगृह में उस पिंडी को स्थापित किया। इस स्थान के नाम से यह देवता भी द्रोपू नाम से प्रसिद्ध हुआ।

चंभू सनगेसर

गाँव : देउगी, तहसील : निरमंड।

मूलस्थान, मंदिर एवं भंडार : देउगी।

शाखा मंदिर : गाँव देउरीधार, नौण।

स्थापत्य : एक मंज़िल का यह मंदिर लगभग 300 वर्ष पुराना है। तराशे पत्थरों और लकड़ी की चिनाई में यह काठकुणी शैली में निर्मित है। स्लेटों से ढकी ढलानदार छत



है, जिस पर कुरड़ है। मंदिर के गर्भगृह के काष्ठ द्वार पर सुन्दर नक्काशी की गई है। इसके बाहर हवन कुंड के खुले कक्ष में काष्ठकला से सज्जित 1.5'x1.5' के काष्ठ स्तंभ हैं। मंदिर परिसर का मुख्य द्वार तराशे पत्थरों से निर्मित है, जिस पर स्लेटों की छोटी छत है। मंदिर के पीछे स्थित तीन मंज़िला कोठी में नौ कमरे हैं तथा बगल में दो मंज़िला 'चौरा' है, जिसमें मशाण और जल देवता स्थापित हैं।

अधिकार क्षेत्र : गाँव कतमोर, कंडा, कुलथा, खलैर, देउगी, नौण, उरटू, डुंमट, घाटू, जझार, तांदी, टींचा, बशला, मरगी, भालसी, निरमंड।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में समिति।

न्याय प्रणाली : गूर, कारदार, पुजारी आदि के माध्यम से।

पूजा : प्रातः-सायं शंख व घंटा ध्वनि करते हुए धूप जलाया जाता है।

रथ : चौरस आधार वाला, शिखर की ओर तिरछा।

मोहरे : आठ, क्रमशः देऊ सनगेसर, देऊ द्रोपू, चंभू कशोलड़, चंभू चकेश्वर, बूढ़ी नागिन, जल देवता, मशाण व शर्नाई नाग।

मेले-त्योहार : फाल्गुन संक्रांति को 'गड़ाई' पर्व, फाल्गुन मास की पंचमी को पूज, वैशाख संक्रांति को देवता का मुख्य मोहरा मंदिर के गर्भगृह में रखा जाता है और 'छाहड़ी' गायी जाती है। उसी दिन गूर तथा देवता की डाउड़ी (छड़ी) देउरीधार गाँव को जाती है, 11 वैशाख की रात्रि को निरशू मेले का आयोजन, ज्येष्ठ संक्रांति को देवता का मोहरा पुनः गर्भगृह में रखकर छाहड़ी गायी जाती है, 1 से 15 ज्येष्ठ के मध्य एक बार वारली फाटी (क्षेत्र) का सतराड़ा, 26 ज्येष्ठ को राईजाच, 28 प्रविष्टे को देवता का रथ टींचा गाँव को जाता है और 29 को वापिस आकर भंडार में चला जाता है। इस प्रकार 1 से 28 ज्येष्ठ तक रथ सजा रहता है। भाद्रपद मास की संक्रांति से 20 प्रविष्टे तक देवता पुनः रथ पर सुसज्जित रहता है, 12 भादों को पराठवी नामक खलियान में ढाई फेरे नाटी लगती है, देउरी धार में तीसरे वर्ष 14 से 20 भादों तक सात दिनों का मेला लगता है, 3 असौज को घाटू में शैरी

मेला, दशमी को देवता, कुल्लू दशहरा में भाग लेने जाता है, माघ मास में 'घृतमा' पर्व, जिसके बाद एक मास तक देवता के दर्शन नहीं होते।

जनश्रुति : चार चंभू क्रमशः सनगेसर, चकेश्वर, कशोलड़ तथा ढ्रोपू की एक ही स्थान से उत्पत्ति होने के कारण ये चार भाई और देवी अंबिका इनकी जन्मदात्री मानी जाती है। ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण माता ने सनगेसर को निरमंड में रहकर राजपाट चलाने को कहा, लेकिन सनगेसर ने माँ से कहा कि वह यहाँ नहीं रह सकता और आज्ञा लेकर देउगी चला गया। किंवदंती है कि उन्हीं दिनों निरमंड में मणियर नाम का एक दानी ब्राह्मण रहता था। उसके पास कुल 120 में से 60 गायें दूध देने वाली थीं।

एक बार एक गाय ने प्रतिदिन शाम को दूध देना बंद कर दिया। कुछ दिन इसी प्रकार बीत जाने के बाद ब्राह्मण ने ग्वाले को इसका कारण जानने को कहा। ग्वाले ने साठ हाथ लम्बी रस्सी उस गाय की पूँछ में बाँध दी और गायों को चराने के लिए पोकधार ले गया। शाम को जब सभी गायें घर की ओर चलने लगीं तो रस्सी से बंधी गाय उरटू की ओर चल पड़ी। ग्वाला भी उसके पीछे हो लिया। चलते-चलते गाय टिंबर खड्ड से होते हुए उरटू में देउगी नामक स्थान पर पहुँची। वहाँ उसे भेखल की एक झाड़ी में स्वतः दूध की धार छोड़ते देख ग्वाले को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने वापिस आकर ब्राह्मण को यह बात सुनाई। तब निरमंड से पाँच सौ ब्राह्मण और बीजू राणा खुदाई का सामान लेकर देउगी पहुँचे और झाड़ी को खोदना आरम्भ कर दिया। वहाँ उन्हें पत्थर की एक पिंडी मिली। उन्होंने पिंडी को निकालने का भरपूर प्रयत्न किया, लेकिन 90 फुट गहरी खुदाई के बाद भी पिंडी हिली तक नहीं। सभी आश्चर्यचकित होकर देवी अंबिका के पास गए। माता ने उन्हें बताया कि यह सनगेसर देवता है, अतः पिंडी को वहीं रहने दिया जाए और इस स्थान पर देवता के मंदिर का निर्माण किया जाए। अंबिका माँ ने देवता की सेवा में दो पुजारी, दो कारदार और दो मशाण देउगी भेजे।

चजाई नाग

गाँव : शरशाह, तहसील : निरमंड।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : बड़ा शरशाह।

शाखा मंदिर : छोटा शरशाह, शारवी।

स्थापत्य : प्रस्तर और लकड़ी की चिनाई में पत्थर के थड़े पर निर्मित यह काठकुणी शैली का तीन मंज़िला मंदिर लगभग 250 वर्ष पुराना है। ऊपर की मंज़िलों में जाने के



लिए भीतर से लकड़ी की सीढ़ी है। हर मंज़िल में एक कक्ष है। सबसे ऊपर की मंज़िल में मूर्ति स्थापित है। इस मंज़िल में चारों ओर लकड़ी का बरामदा है, जिस के काष्ठ-स्तम्भों पर सुन्दर नक्काशी की गई है।

अधिकार क्षेत्र : गाँव शरशाह, मरगी, कूटड़, दपड़ाड, शारवी, सनारा, शमारन, सीताबाग, लभोड़ा, शैहदरी।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।

पूजा : देवता के निमित्त प्रतिदिन प्रातः-सायं बेठर, बनेर व जड़ी धूप जलाया जाता है।

रथ : चौरस आधार, शिखर की ओर तिरछा।

मोहरे : बारह। मुख्य मोहरा चजाई नाग का, शेष ग्यारह मोहरे देऊ बराहुला व सराजी देवता सहित कालियों के।

मेले-त्योहार : चैत्र नवरात्रों में पूजा, 13 आषाढ़ को प्रतिवर्ष छोटा शरशाह के समीप चनाच मैदान में शाड़नू मेला, हर तीसरे वर्ष भाद्रपद मास में चनाच स्थान पर चार दिवसीय जुब्बड़ जातर, कार्तिक कृष्णपक्ष की चतुर्दशी की रात्रि को शारवी में दयाउड़ी मेला। 14 आषाढ़ से 20 आषाढ़ तक देवता हार की यात्रा पर जाता है, जिसे 'बिल्ह' कहते हैं, अंतिम दिन शारवी में आयोजित मेले में सम्मिलित होता है। प्रत्येक दस-बारह वर्षों के बाद देवता सरेउलसर की यात्रा पर जाता है। किंवदंती है कि वह अपनी माँ के स्तनपान के लिए सैकड़ों गज़ गहरे पानी में डुबकी लगाता है। उस समय देवता के तीन गूर सरेउलसर की तीन बार परिक्रमा करते हैं। नया रथ बनने पर भी उसके बडारन यज्ञोपवीत के बाद देवता भिक्षा हेतु माँ के पास सरेउलसर जाता है।

जनश्रुति : जनसाधारण की मान्यता है कि चजाई नाग सरेउलसर से भागकर ख्वांडा गही व डोम होते हुए नौनू कंडा पहुँचा। यहाँ 'माण-मरेछों' का शासन था। ये लोग बड़े शक्तिशाली व उद्दंड प्रवृत्ति के थे और देवी-देवताओं का विरोध करते थे। इनका मुख्यालय बड़ा शरशाह गाँव में था, जहाँ इन्होंने बड़े-बड़े नक्काशीदार पत्थरों से अट्ठारह मंज़िला कोठी का निर्माण करवाया था। आज भी यह कोठी 'ठारा बीणे चौकी' के नाम से जानी जाती है। छोटा शरशाह में भी इनकी एक कोठी थी। यहाँ से लगभग एक किलोमीटर दूर चनाच नामक स्थान है, जो देवी-देवताओं का स्थल माना जाता था। 'माण मरेछों' ने छल-बल से चनाच पर कब्ज़ा कर लिया। देवी-देवताओं का यहाँ आना बंद कर दिया और यहाँ प्रतिवर्ष 'जुब्बड़ जातर' नाम से मेला जुटाना आरम्भ कर दिया। इन लोगों के अत्याचार की सीमा बढ़ने लगी। एक बार चनाच में जुब्बड़ जातर लगी थी और सभी माण-मरेछ जातर में मौज-मस्ती कर रहे थे। चजाई नाग ने मौका देखकर रात को मरेछों की बड़ा शरशाह में स्थित अट्ठारह मंज़िल की कोठी तहस-नहस कर दी तथा वहाँ अपना कब्ज़ा कर लिया।

अगले दिन वह चनाच गया और मेले में उपस्थित सभी 'माण-मरेछों' को मार कर स्वयं शरशाह चला आया। कुछ दिनों बाद नाग ने एक चमत्कार दिखाया गाँव की सात महिलाएँ बावड़ी से पानी की मटकियाँ भरकर ले जा रही थीं। वे एक स्थान पर विश्राम करने बैठ गईं। विश्राम के बाद जब वे चलने लगीं तो उनमें से एक की मटकी इतनी भारी हो गई कि वह उसे उठा न सकी। तब उसने देवता का स्मरण किया तथा मन्नत माँगी। मन्नत के बाद मटकी का भार कम हो गया। उसका पति इस घटना के बारे में पूछताछ करने के लिए दुराह गाँव के पंडित के पास गया। अचानक किसी व्यक्ति को खेल आई। उसने कहा कि वह चजाई नाग है और बड़ा शरशाह में 'ठारा बीणे चौकी' के पास उसका मंदिर बनवाया जाए। तब लोगों ने मरेछों की कोठी के स्थान पर उसका मंदिर बनवाया और उसमें देवता के रूप में उसकी पूजा की जाने लगी।

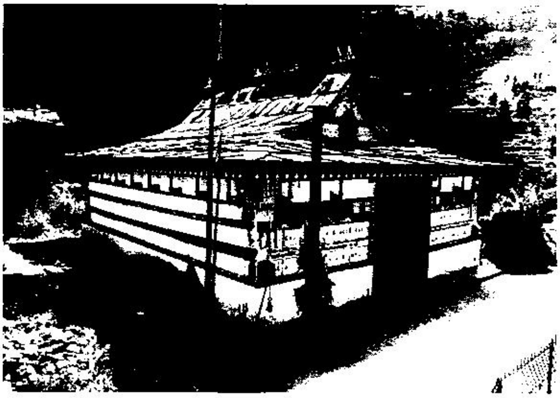
चलासनी देवी

गाँव : जाओं, तहसील : निरमंड।

मूल स्थान, मंदिर व भंडार : जाओं।

स्थापत्य : काठकुणी शैली में निर्मित स्लेट की छतवाला एक मंज़िल का मंदिर। इसमें काष्ठ पर चित्रकला है।

अधिकार क्षेत्र : सालम फाटी, चाकल व शिल्ही फाटी के तीन गाँव जवाग, तिंदर तथा चमारला।



प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से पूछ, लड्डू व पर्चियाँ डालने की विधि से।

पूजा : प्रातः-सायं पारम्परिक लोक विधि से।

रथ : चिड़ी शैली।

मोहरे : आठ मोहरे रथ में व दो मोहरे मंदिर में, इनमें से सात मोहरे स्वर्ण के व तीन चाँदी के हैं।

मेले-त्योहार : 7-8 वैशाख को निरशू मेला जाओं, भाद्रपद मास की संक्रांति को क्षेत्र के दस गाँव में बारी-बारी से पलैई नामक पर्व और फाल्गुन मास में गड़ाई पर्व मनाया जाता है।

जनश्रुति : बाड़ाकुई से उत्पन्न हुई सात भराड़ियों में से एक देवी चलासनी के सम्बंध में जनश्रुति है कि गाँव जाओं में उसका आगमन वायुरूप में शुवा-कमरू (ज़िला किन्नौर) से हुआ है। ऐसी मान्यता है कि एक बार बंडा-बील (बुशहर) नामक स्थान पर देवासुर संग्राम हो रहा था। उस समय चलासनी देवी रांवी गाँव में माता भीमाकाली के पास आई। कुछ दिन वहाँ रुककर सतलुज नदी पार कर कशोली गाँव होते हुए चूनागही नामक स्थान पर पहुँची। परंतु वह स्थान अच्छा न लगने के कारण देवी वहाँ से मधैणी जोत चली गई और सामने चायल घाटी को निहारा। वहाँ मूला नामक स्थान पर रायनाग से मुलाकात कर वह कूर्पन खड्ड होते हुए देऊर से आगे धारला गाँव और वहाँ से दाला-दैणी होते हुए जाओं गाँव पहुँची। वहाँ उसकी भेंट माँ गौरा से हुई, जिसका जाओं में पहले से ही निवास था। देवी चलासनी ने वहाँ के लोगों को कई चमत्कार दिखाए, जिससे प्रसन्न होकर माँ गौरा ने बैठा राज अपने पास रखा और चलता राज चलासनी को दे दिया। तब से जाओं में नरोड़ी देवी (माँ गौरा) व भराड़ी देवी दोनों की मान्यता एक साथ है।

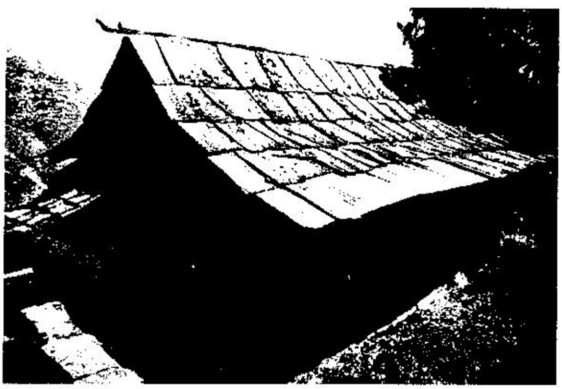
नरोड़ी देवी ने ग्रामवासियों को स्वप्न में दृष्टांत देकर देवी चलासनी को रथ रूप में स्थापित करने की व्यवस्था करवाई और फाटी चायल के दस गाँवों का चलता राज भी उसे सौंपा। एक बार जलांडी ऋषि घूमते हुए देवी के क्षेत्र में पहुँचा तो उसने ऋषि के पैर छूकर आशीर्वाद स्वरूप उससे तींदर, जवाग और चमारला गाँव प्राप्त किए। चायल नामक स्थान पर वास के कारण देवी चलासनी कहलाई।

चेवड़ी माता

गाँव : चेवड़ी, तहसील : निरमंड।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : चेवड़ी।

स्थापत्य : एक मंज़िल का यह मंदिर लगभग 100 वर्ष पुराना है। काष्ठ-प्रस्तर निर्मित काठकुणी शैली के मंदिर की ढलवाँ छत स्लेटों की है जिस पर कुरड़ लगा है। गर्भगृह के काष्ठ द्वार पर सुन्दर नक्काशी की गई है। मंदिर का मुख्य द्वार तथा हवन-कक्ष का बाहरी द्वार तराशे पत्थरों से निर्मित हैं। मंदिर के साथ तीन मंज़िल की कोठी है, जिसमें ग्यारह कक्ष हैं। तीसरी मंज़िल में 40´X10´ का



सभागार है। कोठी की धरातल मंज़िल का द्वार प्रस्तर निर्मित है, जिस पर काष्ठ फलक लगा है। मंदिर परिसर में पत्थर के चक्के बिछे हैं।

अधिकार क्षेत्र : निथर व देहरा पंचायतें।

प्रबंध : कारदारी अध्यक्षता में समिति।

पूजा : पुजारी प्रातः ब्राह्म मुहूर्त में उठकर स्नानोपरांत नंगे पाँव कूट-काँसे के लोटे में बावली से जल भर कर लाता है। उस जल से स्नान करवा कर देवी को वस्त्र पहनाता

है। आभूषण केवल विशेष पर्वों पर ही पहनाए जाते हैं। उसके बाद पंचोपचार पूर्वक देवी की पूजा की जाती है। सायंकाल को आरती होती है।

रथ व मोहरे : नहीं हैं। यात्रा में माँ का कलश जाता है।

जनश्रुति : देवी ने हज़ारों वर्ष पूर्व कन्या के रूप में लोगों को दर्शन देकर मंदिर का निर्माण करने का आदेश दिया। देवी के आदेश के पालन में लोगों ने मंदिर बनवाया और उसमें देवी की स्थापना की।

छैंजणू देव

गाँव : कलारस, तहसील : निरमंड।

मूल स्थान, मंदिर व भंडार : कलारस।

स्थापत्य : काठकुणी शैली में निर्मित एक मंज़िल का मंदिर जिसकी ढलानदार छत चादर की है।

अधिकार क्षेत्र : कलारस गाँव का लुहार समुदाय।

प्रबंध : कारदारी अध्यक्षता में समिति।

न्याय प्रणाली : पुजारी द्वारा पूछ व पर्ची डालकर।

पूजा : प्रातः-सायं धूप-दीप से।

रथ : चिड़ी शैली।

मोहरे : पीतल के बने आठ।

मेले-त्योहार : माघ के 20 प्रविष्टे को गड़ाई पर्व, 26 ज्येष्ठ को राय जाच, 3 आश्विन को अरसू में शैरी मेला।

जनश्रुति : छैंजणू देव को भीम तथा हिडिम्बा के पुत्र *घटोत्कच* का प्रतिरूप माना जाता है। कलारस गाँव में इसकी स्थापना के सम्बंध में लोकमान्यता है कि लगभग 55 वर्ष पूर्व कुल्लू ज़िला की बंजार तहसील के गाँव रिखड़ी का निवासी लालसिंह एक बार मंडी जा रहा था तो रास्ते में मंगलौर खड्ड के पास छैंजणी गाड़ में उसे एक मोहरा मिला, जिसे वह अपने साथ ले आया और घर पर उसकी पूजा करने लगा। परन्तु देवता का वहाँ मन नहीं लगा और वहाँ से उठकर वह बशलेऊ जोत होता हुआ दक्षिण की ओर जुंगी जंगल से आगे सरौहणी गाँव पहुँचा। देवी सरौहणी के पास रहकर उसने वहाँ हो रहे मेले में भाग लिया। कुछ दिनों बाद वह वहाँ से कलारस गाँव पहुँचा, जहाँ लुहार समुदाय के लोग रहते थे। यह स्थान उसे बहुत अच्छा लगा और वहीं रहकर वह लोगों को चमत्कार दिखाने लगा, जिससे प्रभावित होकर उन्होंने देवता के निमित्त मंदिर व रथ का निर्माण किया। देवता छैंजणू कभी-कभी शक्ति प्राप्त करने के लिए अपनी माँ हिडिम्बा के पास छैंजणी गाड़ की यात्रा पर जाता है।



जमलू देऊ

गाँव : बशला, तहसील : निरमंड।

मूल स्थान : मलाणा (कुल्लू)।

मंदिर एवं भंडार : गाँव बशला।

स्थापत्य : एक कक्ष का साधारण मंदिर जिसका निर्माण लगभग 30 वर्ष पूर्व किया गया है। इससे पहले यहाँ देवता का चिह्न 'प्रस्तर का घोड़ा' खुले स्थान में रहता था।

अधिकार क्षेत्र : गाँव बशला।

प्रबंध : कारदारी अध्यक्षता में प्रबंध समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।

पूजा : हर संक्रांति को धूप-दीप से। देवता की एक पालकी गूर ओमप्रकाश के घर में है, जहाँ प्रतिदिन पूजा होती है।

मेले-त्योहार : चैत्र नवरात्र के पहले रविवार को सभी ग्रामवासी मिलकर यज्ञ करते हैं।

जनश्रुति : लगभग 150 वर्ष पूर्व बशला गाँव का धर्मदेव नामक भारद्वाज गोत्रीय ब्राह्मण, जमलू देवता में आस्था होने के कारण, अकसर मलाणा जाया करता था। एक बार मलाणा से वापिस लौटते हुए जमलू देवता उसके साथ बशला आ गया। उसी रात धर्मदेव के पौत्र ढेबाराम को खेल आई और वह चिमटा लेकर सभी गाँववालों के घरों के दरवाज़े खोलने लगा। सारे द्वार खोलने के बाद वह अपने घर लौट आया। यह क्रम कई दिनों तक चलता रहा। एक दिन जब उसे पुनः खेल आई तो लोगों ने एकत्र होकर उससे इस कृत्य का कारण पूछा। उसने कहा कि 'मैं देव जमलू हूँ और इस गाँव में रहना चाहता हूँ।' तब लोगों ने देवता के निमित्त उस स्थान पर, जहाँ देवता रहना चाहता था, एक मंदिर का निर्माण किया।

जमलू देवता

गाँव : झलैर, तहसील : निरमंड।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : झलैर।

शाखा मंदिर : गाँव डियाऊगी (मौढ़ा आगे)।

स्थापत्य : लकड़ी व पत्थर से पहाड़ी शैली में बना दो मंज़िल का मंदिर है। पुराने मंदिर की शैली में ही लगभग बीस वर्ष पहले नया मंदिर निर्मित हुआ है।

अधिकार क्षेत्र : गाँव झलैर, डियाऊगी, खुमटा खानदान, चनेड-नन्द खानदान, ढलैर में चूह खानदान।



प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में क्षेत्र के आठ अन्य कारकुनों की समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से पूछ, लड्डू या पर्ची डालने की विधि से।

पूजा : प्रातः-सायं धूप-दीप से।

रथ : पहले सुखपालनुमा था, परन्तु अब चिड़ी रथ है।

मोहरे : नौ मोहरे, जिनमें से एक मोहरा हनुमान जी का है जो रथ पर विराजते हैं, परन्तु देवता की मूल आकृति सुखपाल में चाँदी के घोड़े पर रहती है।

मेले-त्योहार : प्रतिवर्ष चैत्र संक्रांति को त्वार पर्व झलैर में व 'पूज' पर्व मौढ़ा आगे होता है।

जनश्रुति : निरमंड क्षेत्र के गाँव झलैर में खजु गूर नाम का एक व्यक्ति रहता था। जब कभी अचानक उसमें दैवीशक्ति का प्रवेश होता था तो वह झलैर से उल्टा चलकर डियाउगी गाँव में मौढ़ा आगे स्थान तक जाता और वैसे ही लौटता था। इस प्रकार की घटना बार-बार घटने पर स्थानीय लोग रियासी नाग, जिसकी झलैर में मान्यता है, के पास गए। वे उसको मौढ़ा आगे स्थल पर ले गए। जैसे ही नाग देवता वहाँ पहुँचा, खजु गूर में दैवी शक्ति का प्रवेश हुआ और मौढ़ा आगे से एक तितली निकली। ज्यूँही खजु ने उसे हाथ में पकड़ा, वह पत्थर के एक चमकीले गोले में परिवर्तित हो गई। तब उसने बताया कि यह गोला जमलू देवता का प्रतीक है और वह इसे रियासी नाग के साथ झलैर गाँव में लाया। कुछ दिन खजु इसे अपने घर में रखकर ही पूजता रहा। कालांतर में इसके खानदान वालों ने अपनी भूमि में मंदिर का निर्माण कर उसमें जमलू देवता के रूप में उस चमकीले पत्थर की विधिवत् स्थापना की।

जलांडी ऋषि

गाँव : सराहन, तहसील : निरमंड।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : सराहन।

शाखा मंदिर : गाँव बागा, ठारला, ब्रामगढ़।

स्थापत्य : काठकुणी शैली में निर्मित पत्थर की स्लेट की ढलवाँ छत वाले तीन मंज़िल के मंदिर का पुराना स्वरूप

बनाए रखते हुए लगभग बीस वर्ष पूर्व नए मंदिर का निर्माण किया गया है।

अधिकार क्षेत्र : सालम कोठी, ब्रामगढ़, समस्त बाहरी सराज।

प्रबंध : स्थायी कारदारी अध्यक्षता में समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से तथा पूछ, लड्डू या पर्चियाँ डालकर।

पूजा : प्रातः-सायं प्रतिदिन धूप-दीप से।

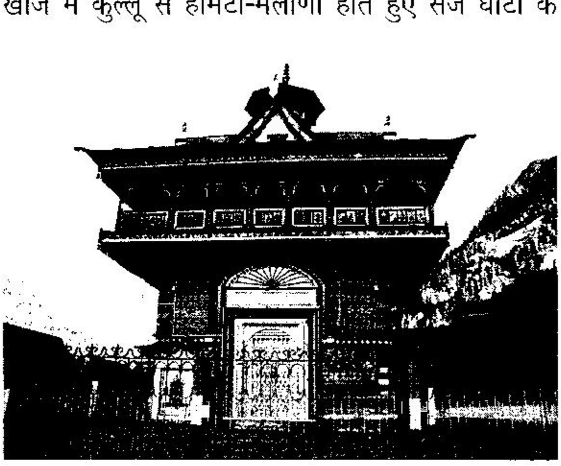
रथ : चिड़ी शैली।

मोहरे : अठारह। इनमें से नौ मोहरे रथ में लगते हैं तथा शेष नौ मंदिर में ही रहते हैं। चार मोहरे अष्टधातु के, सात स्वर्ण के व सात रजत निर्मित हैं।

मेले-त्योहार : फाल्गुन व चैत्र संक्रांति को 'त्वार' उत्सव, वैशाख संक्रांति को दो दिवसीय झीरू मेला, श्रावण संक्रांति को त्रिदिवसीय शडाम मेला, आश्विन संक्रांति से अगले दिन शैरी मेला, मार्गशीर्ष अमावस्या को बूढ़ी दियाली।

जनश्रुति : जलांडी देव की भारथा के अनुसार वह मानसरोवर स्थित वासुदेव ऋषि के चार पुत्रों में से एक है। इसका असली नाम शियाना ऋषि है। ये चारों भाई जब मानसरोवर से निकलने लगे तो यह सबसे छोटा भाई सोया हुआ था, जिसे सबसे बड़े भाई शृंगी ऋषि ने जगाया। शयन शब्द से इसका नाम शियाना पड़ा।

अपने दो भाइयों माना और ध्याना को बीच में ही छोड़कर शृंगी और जलांडी अपने लिए अनुकूल स्थान की खोज में कुल्लू से हामटा-मलाणा होते हुए सैंज घाटी के



बूंग-बढ़ोगी गाँव से सकीरन कंडा पहुँचे। वहाँ बड़े भाई शृंगी से आज्ञा लेकर वह बिशलेऊ जोत पर आया, जहाँ से दक्षिण की ओर जुंगी जंगल से आगे सराहन का मैदान दिखाई दिया। रुचिकर लगने से वह वहीं रहने लगा। इससे पहले मार्ग में उसे कई अन्य देवता मिले जो इसे बैठा राज देना चाहते थे, परंतु उसने किसी की बात न मानी। सराहन गाँव में कुछ राजपूत रहते थे। साधु का वेष धारण कर जलांडी एक राजपूत के घर भिक्षा माँगने गया, परन्तु वहाँ उसे भिक्षा नहीं मिली जिस कारण उन्हें देवदोष लगा। इसके निवारण हेतु पंडित ने उन्हें देवता का मोहरा बनाकर उसकी स्थापना करने को कहा। मोहरा बनाने का काम गाँववालों ने एक लुहार को सौंपा। उसने कई बार विभिन्न स्थानों पर मोहरा बनाने का प्रयत्न किया, परंतु हर बार कुछ न कुछ त्रुटि रह जाने के कारण, वह टूटता रहा। अंत में जब 'बैखली डुआर' में बैठकर मोहरा बनाया तो वह बहुत ही सुंदर बना। लोक विश्वास के अनुसार देवता ने लुहार को इस आशय से अंधा कर दिया कि वह इतनी सुंदर मूर्ति किसी अन्य देवता की न बना सके।

देवता ने गाँववालों को कई चमत्कार भी दिखाए जिससे उसके मोहरे को रथ पर सजाकर मंदिर में रख दिया गया। गाँव के समीप जलोड़ी में उन दिनों एक म्लेच्छ परिवार रहता था जो गाँववालों को डराया-धमकाया करता था। देवता के वहाँ आगमन से लोगों ने उस परिवार की बात सुनना बंद कर दिया। इससे उन्हें बड़ा क्रोध आया। एक दिन मेले में जब देवता का रथ मंदिर से बाहर निकाल कर 'झीटो खेच' नामक मैदान में रखा गया तो म्लेच्छों के मुखिया ने उलटा करके रथ को वहाँ से नीचे फेंक दिया। देवता का पुजारी, जिसकी बेटी म्लेच्छ परिवार में जबरन ब्याही गई थी, उससे इतना डरता था कि उसने पूजा के लिए रथ को सीधा तो किया पर बाद में इसे फिर उलटा कर दिया।

अंत में देवता ने पुजारी की गर्भवती लड़की में अपनी शक्ति का प्रवेश कराकर सारे म्लेच्छ परिवार को

ज़हर भरी रोटियाँ खिलाकर मार डाला। केवल वही लड़की बची जो बाद में अपने मायके आ गई। यहाँ उसने एक बच्चे को जन्म दिया। आज भी इस खानदान को देवता का रथ ढलाणे यानी गिराने के कारण ढलाडू माहता नाम से पुकारा जाता है और चूँकि जलांडी देवता ने उस लड़की के ज़रिए पूरे म्लेच्छ परिवार को खत्म किया था, इसलिए उस खानदान को हर कार्य में मुख्य स्थान दिया जाता है।

जाहरू नाग

गाँव : खरगा, तहसील : निरमंड।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : खरगा।

शाखा मंदिर : तांदी, शिलगर, तारापुर, मणेलूधार।

स्थापत्य : प्रस्तर एवं काष्ठ निर्मित लगभग 400 वर्ष पुराने मंदिर का जीर्णोद्धार हाल में हुआ है। यह मंदिर तीन मंजिल का है। मंदिर की शैली पुराने जैसी रखी गई है और काष्ठ कला भी निर्मित है। स्लेट की छत पर कुरड़ है।



अधिकार क्षेत्र : गाँव तांदी, सेरी, खरगा, नाल, डवारी, ऐजर, चिलागे, बक्खन, दरभा, शीकरी।

प्रबंध : अस्थाई प्रबंध समिति।

न्याय प्रणाली : गूर, कारदार, पुजारी आदि के माध्यम से।

पूजा : प्रातः-सायं गुग्गुल धूप व घी के दीपक से।

रथ : चौरस आधार और शिखर की ओर तिरछा।

मोहरे : अष्टधातु, सोने, चाँदी व पीतल के कुल नौ।

मेले-त्योहार : चैत्र मास की पूर्णिमा को हूम यज्ञ, 10-12 ज्येष्ठ को जेठ की जाच, प्रतिवर्ष दिशापूजन, प्रत्येक पाँच वर्ष में यज्ञ, बाहर से मेहमान देवता के आने पर मेले का आयोजन।

जनश्रुति : सरपारा नामक सरोवर से बूढ़ी नागिन और जल देवता के सहयोग से उत्पन्न नौ नागों को, बूढ़ी नागिन की माँ ने इस भय से कि कहीं वे उसके परिवार को कोई क्षति न पहुँचाएँ, मारने की योजना बनाई। उसने एक बड़ा-सा तवा गर्म करके उन्हें जलाने के लिए टोकरी खोली तो वहाँ से डरकर भागते हुए एक नाग का कान उस तवे से झुलस गया। इससे वह जाहरा (बहरा) हो गया और जाहरू नाग कहलाया। वहाँ से भागकर वे नाग घमैणी थाच पहुँचे। एक दिन जाहरू नाग जब नींद से जागा तो अपने बड़े भाई राई नाग को वहाँ न पाकर वह रोते-रोते श्रीखंड पर्वत पर भगवान शंकर के पास चला गया। प्रभु ने उसे सहायतार्थ शिलगर देऊ तथा आसमानी बिजली देकर खरगा नामक स्थान पर जाने को कहा। श्रीखंड से वह तारापुर होते हुए खरगा पहुँचा। यहाँ का दुष्ट शासक स्थानीय देवता बाई नाग को तंग किया करता था। बाई नाग ने जाहरू से कहा कि यदि वह उस दुष्ट को मार देगा तो उसे रहने के लिए स्थान मिल जाएगा। जाहरू ने अपनी शक्ति से उस दुष्ट शासक का समूल नाश कर दिया। इससे प्रसन्न होकर स्थानीय देव ने बैठा राज अपने पास रखकर चलता राज उसे दे दिया। तब से वहाँ देवदार वृक्षों के बीच जाहरू नाग का मंदिर है। शिलगर देऊ, चनाकी देऊ, बाई नाग, हीरू-भीरू जोगनियाँ और कालियाँ इसके सहयोगी देवी-देवता हैं।

झाकड़ू नाग

गाँव : कुसुम्भा, तहसील : निरमंड।

मूल स्थान एवं मंदिर : बड़ी ज़ान।

शाखा मंदिर : धार, नागे देऊरा, कुसुम्भा।

स्थापत्य : प्रस्तर व काष्ठ निर्मित लगभग 400 वर्ष पुराने मंदिर का जीर्णोद्धार सन् 2004 में हुआ। दो मंज़िला इस मंदिर का पुराना स्वरूप तो रखा गया है, मगर रंग-रोगन किया है। काष्ठ कला मौजूद है।

अधिकार क्षेत्र : गाँव बगानी, बड़ी ज़ान, शरना आगे, हुमकू, बहान, धार, थाच, क्योधार, धड़ेधार, मोहाली, कैलीधार, बरगुड़ीधार, शाऊगी, बोदला थाच, तरगा, नेऊकुंदर, डुग्गीलग, बरगुडीधार तथा फिलिओल।

प्रबंध : पंजीकृत मंदिर समिति, धार सरगा।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।

पूजा : प्रातः-सायं गुग्गुल धूप, दीप जलाकर वाद्ययंत्रों पर देव धुन के साथ।

रथ : चौरस आधार, शिखर की ओर तिरछा।

मोहरे : अष्टधातु, स्वर्ण एवं रजत निर्मित कुल सात।

मेले-त्योहार : फाल्गुन मास की संक्रांति को गड़ाई पर्व, वैशाख में मेला कुसुम्भा, 12 श्रावण को मेला धार, भादों मास में दिशा पूजन, प्रत्येक पाँच वर्ष के बाद पचौत।

जनश्रुति : बूढ़ी नागिन के सरपारा में उत्पन्न नौ नाग जब डरकर इधर-उधर भागे तो इनमें से सातवाँ भाई मधैणी जोत से डांगा होते हुए हुमकू के समीप बड़ी ज़ान के पास कुज्जे की झाड़ी में रहने लगा। स्थानीय बोली में झाड़ी को झाकड़ कहने के कारण वह झाकड़ू नाग कहलाया। वहाँ उसने भूमि में गज़ मारकर पानी निकाला। कहते हैं कदाचित् एक बूढ़ी ग्वालिन पानी पीने आई। उसने जब झाड़ी में नाग को देखा तो वह भयभीत होकर बिना पानी पिये वहाँ से भागने लगी। नाग ने तब एक साधु का रूप धारण कर उसे पीने के लिए पानी दिया। पानी पीने के बाद ग्वालिन को साधु ने अपनी कथा सुनाई और पुनः नाग का रूप धारण कर लिया। ग्वालिन ने जब यह घटना लोगों को सुनाई तो उन्होंने वहाँ नाग देवता का मंदिर बनाया। कालांतर में धार, नागे देऊरा और कुसुम्भा गाँवों में भी इस नाग के मंदिर बनाए गए। इन क्षेत्रों में किसी 'मुआणे' का शासन था। वह नाग देवता को तंग करता था। लोक विश्वास है कि एक बार कुसुम्भ नामक ऋषि श्रीखंड होते हुए कमरू से धार गाँव पहुँचा। उसने जब मुआणे को नाग देवता को तंग करते देखा तो नाग के आग्रह पर ऋषि ने मुआणे का वध कर डाला। तब नाग ने अपने पास बैठा राज रखकर कुसुम्भ ऋषि को चलता राज दे दिया और दोनों देवता इकट्ठा राज करने लगे। अतः दोनों के मोहरे भी एक ही रथ में सजाए जाते हैं। ऊपर कुसुम्भ ऋषि का मोहरा होता है जिसके बाल सफेद हैं तथा नीचे नाग देवता का मोहरा सुशोभित रहता है, जिसके बाल काले हैं।

झाकड़ू नाग

गाँव : धार। तहसील : निरमंड।

मूल स्थान : बड़ी ज़ान। **मंदिर एवं भंडार :** धार।

शाखा मंदिर : हुमकू, कुसुम्भा, नागे देवरा।

स्थापत्य : देशज शैली में निर्मित।

अधिकार क्षेत्र : गाँव सालम, फाटी सरगा 15/20 कोठी।

प्रबंध : पंजीकृत कमेटी द्वारा।

न्याय प्रणाली : गूर द्वारा, पर्ची डालकर या कारी द्वारा।



पूजा : प्रातः-सायं प्रतिदिन गुग्गुल धूप, दीपक जलाकर शंख और घण्टा ध्वनि के साथ।

रथ : आधार चौरस, ऊपर की ओर तिरछा।

मोहरे : कुल नौ, जिनमें से कुसुम्भा, घरचांडू, शड़गैहे, बणशीरा, काली और कमरू नाग के एक-एक तथा झाकड़ू नाग के तीन मोहरे हैं।

मेले-त्योहार : आषाढ़ मास में शाड़नू जाच, 13 श्रावण को धार गाँव में मेला लगता है। श्रावण मास में प्रायः 5 प्रविष्टे को सरगा गाँव के समीप बुकचा टिब्बा, जिसे देवता का गढ़ मुख्यालय माना जाता है, में गढ़ पूजा होती है। भाद्रपद की अमावस्या के दिन देवता का गूर रात के समय देवशक्ति के प्रविष्ट होने पर प्रजा के दुःखों के निवारण व सुख की कामना हेतु अपने पूरे क्षेत्र की परिक्रमा करता है। प्रजा की सुख-शांति तथा वर्ष भर अपने क्षेत्र की भूत-प्रेतों से रक्षा करने हेतु भादों या असौज मास में किसी निर्धारित समय पर झाकड़ू नाग रथ पर आरूढ़ होकर बाजे-गाजे व पूरी प्रजा सहित पूरी रात परिक्रमा करता है, जिसे रेहमान कहते हैं।

जनश्रुति : देखिए झाकड़ू नाग, गाँव कुसुम्भा।

डगेणी दुर्गा

गाँव : डगेणी, **तहसील :** निरमंड।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : डगेणी।

स्थापत्य : प्रस्तर व लकड़ी से काठकुणी शैली में निर्मित एक मंज़िल का मंदिर लगभग 100 वर्ष पुराना है। इसकी छत स्लेटों से ढकी है। काष्ठ-द्वार पर सुंदर कलाकृतियाँ हैं।

अधिकार क्षेत्र : सम्पूर्ण शिली पंचायत।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में समिति।

न्याय प्रणाली : गाँव के विशिष्ट व्यक्तियों के माध्यम से।

पूजा : पहले प्रतिदिन होती थी, परंतु अब प्रत्येक संक्रांति को प्रातःकाल जड़ी-धूप से।

रथ : रथ की जगह यात्रा में कलश का प्रयोग होता है।

मेले-त्योहार : ज्येष्ठ मास की संक्रांति को बिरशी पर्व

जनश्रुति : लगभग एक हज़ार वर्ष पूर्व डगेणी गाँव के किसी व्यक्ति की गाय, चरने के बाद सायंकाल को जब घर लौटती थी तो दूध नहीं देती थी। जब यह क्रम कई दिनों तक चलता रहा तब उस व्यक्ति ने वास्तविकता जानने के लिए एक दिन गाय का पीछा किया। पीछा करते-करते वह सीताबाग नामक स्थान पर पहुँचा। उसे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि वहाँ कूई की झाड़ी के पास गाय के स्तनों से स्वतः दूध निकल रहा है। जहाँ दूध गिर रहा था वहाँ पर गाय के स्वामी ने खुदाई की तो उसे प्रस्तर की चतुर्भुजी प्रतिमा मिली। वह उस प्रतिमा को गाँव ले आया और सभी लोगों को पूरी घटना बताई। लोगों ने इसे देवी जानकर इसके लिए मंदिर का निर्माण किया और उसके गर्भगृह में मूर्ति की स्थापना की। यह भी लोक मान्यता है कि यह देवी देउरी (आनी जावण) से आई और सीताबाग में लुप्त हो गई थी।

डौंडू देवता

गाँव : ठारवा, तहसील : निरमंड।

मूल स्थान एवं मंदिर : कटानू नामक ढांक।

अधिकार क्षेत्र : गाँव शिल्ह, ठारवा, अम्थवा, पकोरा।

प्रबंध : समिति नहीं है।

जनश्रुति : द्वापर और कलियुग के संधिकाल में ठारवा गाँव पर एक निरंकुश राजा डौंडू का अधिकार था। वह किसी भी देवता के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करता था। वह गाँव के समीप डौंडुओ छौह के पीछे के समतल मैदान पर 7 से 14 वैशाख तक मेला लगाता था। इस दौरान यहाँ घी में पूरियाँ बनती थीं, जिसके लिए लोगों को अपने घरों से घी व अन्न भेजना पड़ता था। जो उसकी आज्ञा का उल्लंघन करता था उसे कई प्रकार की यातनाएँ दी जाती थीं। एक बार राई नाग उधर से गुज़रा और सारी स्थिति देखकर उसका अहंकार तोड़ने के लिए उसने लोहे का गज़

फेंका जिससे ठारवा गाँव में तीन छिद्र पड़ गए। इसके बाद उसने वहाँ के देवता नारसिंह व शाकरा कंडे की कालियों से मंत्रणा करके डौंडू राजा का अस्तित्व मिटाने की योजना बनाई। नारसिंह ने डौंडू के महल के पीछे पानी की बड़ी पोखर बनाई और जोगिनियों ने लोहे के ओले बरसाए, जिससे सारा जल व ओले पोखर में भर गए और वह टूट गई। बाढ़ आने से सारे कार्यकर्ताओं सहित डौंडू उसमें बहकर मर गया और उसका सारा साम्राज्य राईनाग के अधिकार में आ गया। तब देवी चलासन ने डौंडू की बुराई के प्रतीक रूप में राई नाग को वहाँ डौंडू की डाउड़ी (छड़ी) को स्थापित करने के लिए कहा, जो आज भी कटानू ढाँक पर सुरक्षित है।

ढाँक देऊ

गाँव : बायल गाँव में देव ढाँक, तहसील : निरमंड।
मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : देव ढाँक।
स्थापत्य : प्राकृतिक गुफा जिसके भीतर शिवलिंग पर सर्प के फन जैसी आकृति है जिससे लिंग पर पानी टपकता रहता है।
अधिकार क्षेत्र : गाँव निरमंड, बायल।
प्रबंध : प्रधान की अध्यक्षता में समिति।
पूजा : प्रातः-सायं धूप-दीप से।
मेले त्योहार : महाशिवरात्रि पर्व।
जनश्रुति : प्राचीनकाल में आठ करोड़ देवता देव ढाँक के समीप के मांडवा नामक स्थान पर लगने वाले मेले में नृत्य करने आते थे। एक बार शिव-पार्वती भ्रमण करते हुए चम्भूधार पर पहुँचे तो नीचे मांडवा में मेला लगा था और सभी देवता वहाँ विराजमान थे। यह देखकर पार्वती ने भी वहाँ जाना चाहा। तब शिवजी ने पार्वती को यह कहते हुए रोका कि मेले में सम्मिलित देवताओं में कुछ दुष्ट प्रवृत्ति के भी होंगे। लेकिन पार्वती ने शिवजी को किसी तरह मना लिया और नृत्य देखने के लिए मेले में आ गई। नृत्य की इच्छा से नृत्यांगना का रूप धर कर वह भी नाचने लगी।



यह देखकर शंकर भगवान से न रहा गया और वह भी रूप बदल कर नृत्य में सम्मिलित हो गए। परन्तु पार्वती ने उन्हें नहीं पहचाना। नाचते-नाचते शंकर ने पार्वती की उँगली से एक अँगूठी निकाल ली और नृत्य के ढाई फेरे लगाने के बाद वहाँ से अदृश्य होकर देव ढाँक में बनी एक गुफा में छिप गए। नृत्य की समाप्ति पर पार्वती जब चम्भूधार पर पहुँची तो शिवजी को वहाँ न पाकर उन्हें खोजती-खोजती उस गुफा में पहुँची जहाँ वह छिपे थे। पार्वती को देखकर शिवजी ने कहा कि तुम तो नृत्य में वेश्या का रूप बनाकर किसी भव्य पुरुष के साथ नाच रही थीं। परन्तु पार्वती इस बात से मुकर गई। तब शिवजी ने वह अँगूठी प्रमाण स्वरूप उसे दिखाई जो उन्होंने नाचते हुए पार्वती की उँगली से निकाली थी। पार्वती बड़ी लज्जित हुई और क्षमा माँगते हुए उसी ढाँक में शिवजी के साथ रहने लगी। ढाँक में शिवजी के वास के कारण उनका नाम ढाँक देऊ पड़ा।

दक्षिणी महादेव

गाँव व तहसील : निरमंड।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : निरमंड गाँव का डमाका मुहल्ला।

स्थापत्य : पैगोडा शैली का त्रिछतीय यह मंदिर लगभग 1500 वर्ष पुराना माना जाता है, जिसके गर्भगृह का मुख्य द्वार भेखल की लकड़ी से बना होने की भी मान्यता है। इस पर नवग्रह, गणपति तथा शिव-पार्वती की आकृतियाँ उकेरी हैं। गर्भगृह में शिव लिंग रूप में विराजमान हैं। इनके साथ गणपति, विष्णु तथा लक्ष्मी की प्रस्तर प्रतिमाएँ भी स्थापित हैं। गर्भगृह के सामने वाले कक्ष में प्रस्तर निर्मित दो लघु देवालय हैं।



प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में डमाका की समिति।

न्याय प्रणाली : गाँव के विशिष्ट व्यक्तियों के माध्यम से।

मोहरे : छह।

मेले-त्योहार : महाशिवरात्रि, भाद्रपद की शुक्ल षष्ठी को काव छठ।

जनश्रुति : दक्षिणी महादेव डमाका मुहल्ला में रहने वाले भारद्वाज गोत्रीय ब्राह्मणों का इष्ट देव है, जिसकी स्थापना दक्षिण देश कांचीपुरम् से आए इनके पूर्वजों ने यहाँ की थी। निरमंड के दक्षिण-पश्चिम किनारे पर अंबिका मंदिर के पास स्थापित तथा दक्षिण देशीय होने के कारण इस देव का नाम दक्षिणी महादेव पड़ा। बहुत समय पहले इसका मंदिर खदरेशड़ रोपे के पास था, इसलिए इसे *खदरेशणी* देऊ भी कहते हैं।

दमासन देवी

गाँव : कुशवा, तहसील : निरमंड।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : कुशवा।

स्थापत्य : प्रस्तर व काष्ठ से निर्मित यह मंदिर लगभग 350 वर्ष पुराना है। दो मंज़िल के इस मंदिर पर स्लेट की छत के ऊपर कुरड़ व कलश हैं।

शाखा मंदिर : मेला मैदान कुशवा, गाँव शाह।

अधिकार क्षेत्र : गाँव कुशवा, शाहिच, नारकू, किमच, शाह, वडारी, वाहन, सेरी, शूहडवार, नोहनू, सरला, कटेर, रोपड़ी, किन्दला, शरू, बंद थाना, कूंड काफ्टी-दोगरो।

प्रबंध : मंदिर समिति देवी दमासन, कुशवा।

न्याय प्रणाली : गूर, कारदार, पुजारी आदि के माध्यम से।

पूजा : प्रातः-सायं गुग्गुल धूप से।

रथ : आधार चौरस, शिखर की ओर तिरछा।



मोहरे : नौ, अष्ट धातु के छह, चाँदी के तीन।

मेले-त्योहार : फाल्गुन मास में गड़ाई, वैशाख मास में मेला वैशाखी, मार्गशीर्ष में बूढ़ी दिवाली, गढ़ पूजा।

जनश्रुति : भारथा के अनुसार देवी दमासन निरमंड के 'बाड़ाकुई' नामक स्थान से उत्पन्न चार चम्भुओं और सात भराड़ी देवियों में से एक है। उत्पत्ति के बाद देवी अंबिका ने जब अपने-अपने अनुकूल स्थान खोजने के लिए कहा तो सभी वहाँ से चल पड़े। इनमें से दो देवियाँ चूनागही नामक स्थान पर पहुँचीं, जहाँ उन्होंने सात दिन व्यतीत किए। आठवें दिन मघैणी जोत की ओर चल पड़ीं। बीच में जब विश्राम करने के लिए बैठी तो उन देवियों में से एक वहीं सो गई तथा दूसरी जाओं नामक स्थान को चल पड़ी। सोई हुई देवी जब जागी तो अपनी बहन को वहाँ न पाकर वह रैटा नामक स्थान की ओर गई और रई के वृक्ष में रात बिताई। प्रातः यह देवी शाईच की ओर गई और वहाँ के दुष्ट राणा को अपनी शक्ति से मारकर डांगे नामक स्थान पर पहुँची जहाँ उसकी झाकड़ू नाग से भेंट हुई। झाकड़ू ने उसे जदाई क्षेत्र के ठाकुर शारदू सिंह को मारकर वहाँ अपना प्रभुत्व स्थापित करने की सलाह दी। ठाकुर ने वहाँ 60 हाली और 60 कुदाली काम पर लगा रखे थे, जिनके लिए दिन में भोजन ठाकुराइन ने लाना था। भोजन लेकर जब ठकुराइन आधे रास्ते में पहुँची तो उसे भूख लग गई। उसने सोचा कि क्यों न वह अपने हिस्से का भोजन अभी कर ले। खाते-खाते उसे पता ही नहीं चला कि कब उसने 160 व्यक्तियों का भोजन अकेले खा लिया। इस बात से परेशान होकर उसने अपने पुरोहित को बुलाकर इसका कारण जानना चाहा। पुरोहित ने गणना करके बताया कि कोई दैवी शक्ति यहाँ आई है, जिसकी मान्यता होनी चाहिए। परन्तु ठाकुर देवी-देवता में विश्वास नहीं रखता था। उसने ऐसा करने से मना कर दिया और कहा कि मैं इतना शक्तिशाली और साधन सम्पन्न हूँ कि मेरा कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। उसकी इस धृष्टता को देखकर देवी ने उसे अपनी शक्ति से नष्ट कर दिया और वहाँ से शाह नामक स्थान पर जाकर वास करने लगी। एक दिन घूमते हुए वह कुशवा गाँव पहुँची और वहाँ के एक दुष्ट कुम्हार का अंत किया। यह देखकर वहाँ के लोगों ने देवी को मानना आरम्भ किया और गाँव कुशवा व गाँव शाह में मंदिर बनाकर देवी की स्थापना की।

दशनामी अखाड़ा : दत्तात्रेय स्वामी

गाँव : निरमंड, सनारला मुहल्ला।

मंदिर एवं भंडार : निरमंड।

शाखा मंदिर : सम्पूर्ण भारत में विभिन्न स्थानों पर।

स्थापत्य : प्राचीन ढाँचा तोड़कर सीमेंट से बना मंदिर, जिसमें पूर्व-वस्तुएँ अभी भी सुरक्षित हैं।

प्रबंध : श्रीखंड छड़ी यात्रा समिति निरमंड व साधु-संतों की देखरेख में।

न्याय प्रणाली : अखाड़ा की मिट्टी जिसे 'नीम' कहते हैं, का स्पर्श करके सच-झूठ की परीक्षा की जाती है।



पूजा : प्रातः-सायं, धूप-दीप के साथ घंटा-ध्वनि व आरती।

मेले-त्योहार : मार्गशीर्ष की अमावस्या की रात्रि को बूढ़ी दूयाउड़ी, हरिशयनी एकादशी को अखाड़े से श्रीखंड छड़ी यात्रा आरम्भ होती है, जिसमें देश-विदेश से हज़ारों श्रद्धालु भाग लेते हैं, वैशाख शुक्ल अक्षय तृतीय को परशुराम जयंती के दिन यहाँ प्रधान उत्सव मनाया जाता है।

जनश्रुति : आदिगुरु शंकराचार्य की परम्परा के दस संन्यासियों भारती, पुरी, सरस्वती, गिरी, पर्वत, सागर, तीर्थ, आश्रम, वन व अरुण के नाम दशनाम कहलाते हैं। दशनामी अखाड़े की प्रमुख सात शाखाएँ तथा देश भर में हज़ारों पंजीकृत उपशाखाएँ हैं, जिनमें एक उपशाखा निरमंड में भी है। इस अखाड़े की माटी को बहुत पवित्र माना जाता है। सच-झूठ की प्रामाणिकता के लिए लोग यहाँ आकर मिट्टी को छूते हैं। संन्यासियों के इष्ट देवता श्रीदत्तात्रेय स्वामी हैं, जो अखाड़े में प्रतिष्ठित हैं। कहा जाता है कि प्राचीनकाल में अपने माता-पिता को साथ लेकर श्रीदत्तात्रेय भ्रमण करते हुए यहाँ पधारे तो इस रमणीक स्थान में बहुत दिनों तक योग-साधना में लीन रहे। तभी इस स्थान का नाम दत्तनगर (निरमंड) पड़ा। कुछ लोगों का यह भी मानना है कि यहाँ दत्तात्रेय की स्थापना परशुराम जी ने की थी।

द्यानूओ देऊ

गाँव व तहसील : निरमंड।

मूल स्थान : स्किरन कंडा (चैहणी)।

मंदिर एवं भंडार : परशुराम कोठी में।

स्थापत्य : देवता परशुराम की कोठी के भीतर ही स्थापित।

अधिकार क्षेत्र : गाँव बंजार, निरमंड।

प्रबंध : देवी अंबिका के अधीन।

न्याय प्रणाली : गाँव के विशिष्ट व्यक्तियों की समिति।

रथ : चिड़ी शैली।

मोहरे : बारह।

मेले-त्योहार : वैशाख मास की संक्रांति को 'भोगिये जातर'।



जनश्रुति : द्यानूओ देऊ को नृसिंह का प्रतिरूप मानते हैं जो प्राचीन काल में स्किरन कंडा (चैहणी-बंजार) से भूण्डा देखने के लिए निरमंड आया था। एक दिन जब घूमते हुए वह द्यानू नामक स्थान से गुज़र रहा था तो वहाँ की जोगिनियों ने उसे अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए उस पर उपले फेंके तथा निकट आने पर उसे वहीं रहने के लिए कहा। देवता उनके पास ठहर गया। एक बार जब जोगिनियाँ उसके साथ क्रीड़ा कर रही थीं तो मंदेल और पकीरी ब्राह्मण वहाँ आ पहुँचे। पकीरी जब जोगिनियों की स्तुति करने लगा तो मंदेल ब्राह्मण ने देवता को उठा लिया और स्किरन की ओर जाने लगा। जोगिनियों ने देवता को वहाँ से ले जाने के लिए मना किया, परन्तु वह नहीं माना। तब उन्होंने देवता से आग्रह किया कि वह वर्ष में एक बार वैशाख संक्रांति को उनसे मिलने अवश्य आए। इसी आग्रह को मानते हुए द्यानूओ देऊ प्रतिवर्ष वैशाख संक्रांति को जोगिनियों से मिलने जाता है, जिसके निमित्त 'भोगिये जातर' का आयोजन होता है।

धनेश्वरी माँ

गाँव : धनाह, तहसील : निरमंड।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : धनाह।

स्थापत्य : काठकुणी शैली का 9वीं शताब्दी में निर्मित मंदिर। गर्भगृह के द्वार पर सुंदर नक्काशी है। बाहर एक कक्ष में हवनकुंड है। मंदिर के साथ दो मंज़िल की कोठी में आठ कक्ष हैं। परिसर का मुख्य द्वार प्रस्तर निर्मित है।

अधिकार क्षेत्र : गाँव मौणी, धनाह, शाणी, धरेच, गोथना, थलीन, कफटा, शरठी, डवारच, निथर।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में समिति।



न्याय प्रणाली : गाँव के विशिष्ट व्यक्तियों के माध्यम से।

पूजा : प्रातः चार से आठ बजे तक, जिसमें पुजारी ब्राह्ममुहूर्त में स्नान करके नंगे पाँव 'रैबा' (विशेष जलकुंड) से झारी (पात्र) में पानी लेकर आता है। उस जल से माँ को स्नान करवा कर वस्त्राभूषण पहनाता है। धूप-दीप, अक्षत से पूजा करता है। तत्पश्चात् तांबे के बड़े थाल में धूप, धुड़छ, फूल, केसर और कुंकुम सजाया जाता है। इस थाली को 'पचातर' कहते हैं। इस पूजा में लगभग चार घंटे का समय लगता है। जब तक पूजा समाप्त नहीं होती, धनाह गाँव के यज्ञोपवीत धारी ब्राह्मण भोजन नहीं करते। सायंकाल केवल आरती होती है।

रथ : नहीं है, केवल कलश है।

मोहरे : नहीं हैं। गर्भगृह में एक चतुर्भुजी पाषाण मूर्ति है।

मेले-त्योहार : चैत्र एवं आश्विन नवरात्रों में अष्टमी तिथि को मंदिर में पूजा होती है, ज्येष्ठ एवं आश्विन मास के शुक्लपक्ष की चतुर्दशी को जागरा, कार्तिक मास की अमावस्या को मौणी गाँव में दयाउड़ी होती है। मशाण के मंदिर के पास अग्निकुंड से तीन व्यक्ति मशाल जलाकर समीप की ज़ाज़री ज़ान पर चढ़ते हैं। फिर अन्य लोग मशालें जलाकर ज़ान पर चढ़े व्यक्तियों, जिन्हें गढ़िए माना जाता है, को नीचे उतरने के लिए ललकारते हैं। मशालधारी 'हौणू' गाते हैं। ज़ाज़री ज़ान पर चढ़े लोग नीचे नहीं उतरते। सारी रात संघर्ष व नृत्य चलता रहता है। अगली प्रातः मेला परिसर में मंदिर समिति का एक व्यक्ति मूँज से बनी 'चूहड़ी' को लोगों के मध्य फेंक देता है, जिसे हथियाने के लिए लोग आपस में भिड़ जाते हैं। जो चूहड़ी को उठा लेता है, वह विजयी माना जाता है। इसके बाद बाँड (मूंज की मोटी रस्सी जिसका एक सिरा मोटा तथा दूसरा पतला होता है। इसे नाग का प्रतीक माना जाता है) को मेला परिसर में लाया जाता है। इसे एक सिरे से मौणी गाँव के लोग तथा दूसरी ओर से अन्य गाँवों से आए लोग खींचते हैं। इसी बीच एक व्यक्ति बाँड को काट डालता है। मकर संक्रांति को घृतमा पर्व, जिसमें माँ की प्रतिमा को घी से ढक दिया जाता है तथा सात माघ, जिसे सत्रैण कहते हैं, तक गर्भगृह का द्वार बंद रखा जाता है। सातवें दिन घी उतार कर माँ की पूजा की जाती है, वैशाख एवं भाद्रपद मास को मंदिर में देवी के सभी वाद्य बजाए जाते हैं, जिसे 'बे' कहते हैं।

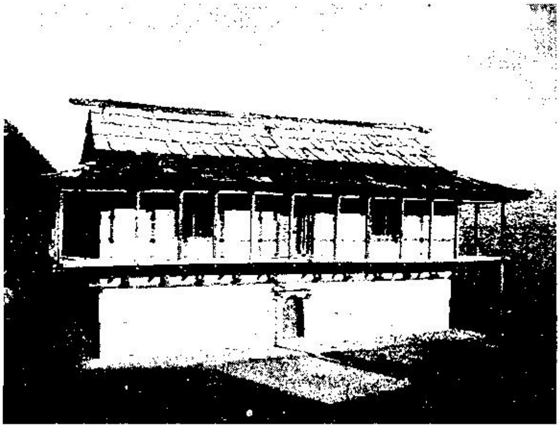
नगेला देव

गाँव : डमैहड़ी, तहसील : निरमंड।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : डमैहड़ी।

शाखा मंदिर : ठेहड़ाधार, कंडू।

स्थापत्य : एक मंज़िल व एक कक्ष का यह मंदिर लगभग 150 वर्ष पुराना है। प्रस्तर व लकड़ी की चिनाई में यह काठकुणी शैली का मंदिर है। स्लेटों से आच्छादित इसकी



ढलानदार छत पर कुरड़ व कलश सजे हैं। काष्ठ-द्वार पर सुंदर कलाकृतियाँ उकेरी गई हैं। मंदिर के साथ दो मंज़िला कोठी है, जिसमें चार कक्ष हैं (चित्र)।

अधिकार क्षेत्र : गाँव डमैहड़ी, प्रंतला, पांकवा, दोगरी, बूंग, खदेव, बनाया, खजोह।

प्रबंध : कारदारी अध्यक्षता में समिति।

न्याय प्रणाली : विशिष्ट व्यक्तियों के माध्यम से।

पूजा : प्रातः-सायं जड़ी धूप से।

रथ : चौरस आधार वाला ऊपर की ओर तिरछा।

मोहरे : विभिन्न देवी-देवताओं के ग्यारह।

मेले-त्योहार : चैत्र मास में प्रतिवर्ष डमैहड़ी, ठेहड़ा देउरा व मधैली में बारी-बारी से पूजा होती है, फाल्गुन संक्रांति को गड़ाई पर्व, 4 श्रावण को चिमटी मेला।

जनश्रुति : सरेउलसर स्थित बूढ़ी नागिन के नौ पुत्रों में से एक नगेला नाग ने एक दिन अपनी माँ को रोते हुए देखकर इसका कारण जाना कि उसकी माँ को तंग करने के उद्देश्य से एक तांत्रिक उस सर में आकर अपनी विद्या का दुरुपयोग कर रहा है। उससे छुटकारा दिलाने के उद्देश्य से एक दिन नगेला देव ने अपने माथे से मैल निकालकर आकाश की ओर फेंका, जिससे तांत्रिक पर लोहे के ओलों की वर्षा हुई और उसका अंत हो गया। उसके बाद सरेउलसर छोड़कर वह नाग कंडा, डमैहड़ीधार, मुइन, खेगसू आदि गाँव में अपने चमत्कार दिखाता हुआ निरमंड पहुँचा और देवी अंबिका से अपने लिए स्थान माँगने लगा। देवी ने उसे नातली नाग के पास भेज दिया। वहाँ उसने नातली नाग की पिंडी के समीप भूमि पर गज़ मारकर अपनी भी पिंडी उत्पन्न की, परन्तु वहाँ रुका नहीं और पंजवीरों की स्थली ठोहड़ पहुँचा। कुछ वर्षों तक वहाँ रुककर वह कशोली पहुँचा जहाँ चंभू कशोली का वास था। इसे समीप का एक शक्तिशाली राजा बहुत तंग करता था। नगेला देव ने अपनी शक्ति से उस राजा का नाश किया तो चंभू कशोली ने उसे डमैहड़ी में रहने का स्थान दिया। कुछ दिन वहाँ रुककर वह राई नाग के स्थान कंडू पहुँचा, जहाँ उसके चमत्कारों से प्रभावित होकर राई नाग ने उसे स्थान दे दिया। इस प्रकार वह जहाँ-जहाँ गया वहाँ चमत्कार दिखाकर लोगों में अपनी मान्यता बनाई।

नातली नाग

गाँव : कंडी, तहसील : निरमंड।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : कंडी।

स्थापत्य : लगभग 100 वर्ष पुराने इस मंदिर की निर्माण शैली को बनाए रखते हुए कुछ वर्ष पूर्व ही इसका जीर्णोद्धार किया गया है। काष्ठ-प्रस्तर निर्मित मंदिर की छत स्लेटों से आच्छादित है तथा शिखर पर कुरड़ है। छत के चारों ओर लकड़ी की झालरें लगी हैं। गर्भगृह के बाहर एक कक्ष है जिसके काष्ठद्वार पर कलात्मक चित्रकारी है।

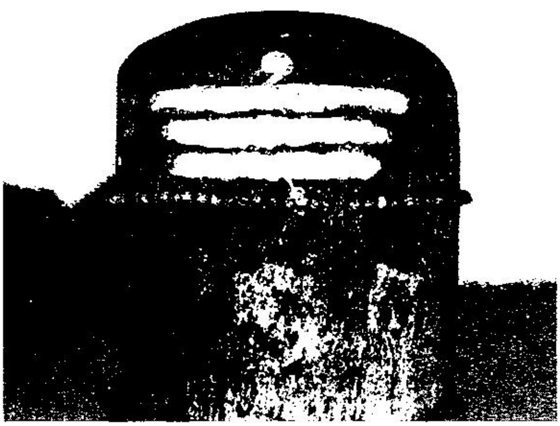
अधिकार क्षेत्र : कोठी कंडी।



प्रबंध : कारदार व पुजारी आदि के माध्यम से।
पूजा : प्रत्येक संक्रांति को जड़ी धूप से।
रथ : नहीं है।
जनश्रुति : यह नातली नाग रामगढ़ का ही रूप है। देखें नातली नाग रामगढ़।

नातली नाग

गाँव : रामगढ़, तहसील : निरमंड।
मूल स्थान एवं मंदिर : रामगढ़।
शाखा मंदिर : गाँव पनागड़ी, बाहवा, पोकधार, कंडी, दिल्ली, कोयल, लाहौर, (पाकिस्तान), सनैर।
स्थापत्य : काष्ठ तथा प्रस्तर निर्मित एक कक्ष का मंदिर, छत स्लेटों की है। मंदिर लगभग 100 वर्ष पुराना है।
अधिकार क्षेत्र : गाँव जाजर, मुइन, कठेड़, कटाहर, फाटी



लोट, दलाश, कंडा, गही, शाखी, गडैण, केदस, फाटी, हिमरी, कंढीगढ़, पोशना आदि के लगभग 100 गाँवों में देवता की मान्यता है।
प्रबंध : कारदारी अध्यक्षता में समिति।
न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।
पूजा : हरेक संक्रांति को स्थानीय जड़ी धूप से।
रथ : नहीं है, देवता लोहे की कड़ाही के रूप में चलता है।
मोहरे : केवल प्रस्तर पिण्डी।

मेले-त्योहार : नाग अपने क्षेत्र में तीसरे वर्ष दौरे पर निकलता है, जिसके स्वागतार्थ गाँव-गाँव में मेले जुटते हैं।
जनश्रुति : त्रेतायुग में राम द्वारा रावण का वध किए जाने के बाद ब्रह्महत्या से मुक्ति के लिए राम, लक्ष्मण, सीता और हनुमान ने गंगा के तट पर तपस्या की। तत्पश्चात् वे भ्रमण करते हुए निरमंड पहुँचे। वहाँ उन दिनों परशुराम जी का भूंडा महायज्ञ चल रहा था। परशुराम ने उनका स्वागत करते हुए यज्ञ की समाप्ति तक उनसे वहीं ठहरने का आग्रह किया। इस पर राम, एकांत में रहने की इच्छा प्रकट कर, नयनगिरि पर्वत की समीपस्थ चोटी पर रहने लगे और वहीं से प्रतिदिन भूंडा महायज्ञ में शामिल होने के लिए आते रहे। यज्ञ समाप्ति के बाद जब रामचंद्र ने परशुराम से प्रस्थान की आज्ञा मांगी तो परशुराम ने कहा कि माँ अंबिका का आदेश है कि वह यहीं रहें और भविष्य में होने वाले महायज्ञ में सहायता करें। तब राम के निवास स्थान में इनके प्रतिनिधि के रूप में एक ऐसे लिंग का प्रादुर्भाव हुआ जिसके तल यानी आधार का अंत नहीं माना जाता। इसी कारण यह नातली (जिसके तल का पता न हो) नाग तथा इनका स्थान रामगढ़ नाम से विख्यात हुआ।

नार सिंह

गाँव : सूमा, तहसील : निरमंड।
मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : सूमा।



स्थापत्य : एक मंज़िल व एक कक्ष का यह मंदिर लगभग 50 वर्ष पुराना है। इसकी चिनाई काष्ठ व प्रस्तर से हुई है।
अधिकार क्षेत्र : गाँव सूमा, डमेहड़ी, बाड़ी, अरसू, प्रंतला तथा पांकवा।
प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में समिति।
न्याय प्रणाली : गाँव के विशिष्ट व्यक्तियों द्वारा।
रथ : चिड़ी शैली।
मेले-त्योहार : चैत्र नवरात्रों में एक दिन पूजा, 26 प्रविष्टे ज्येष्ठ को मेला राय जाच अरसू, मार्गशीर्ष की अमावस्या को दूयाउड़ी, फाल्गुन दो को गड़ाई पर्व।
जनश्रुति : देव भारथा के अनुसार कलियुग के आरम्भिक चरण में सात देव भाई उत्तराखंड की यात्रा करते हुए श्रीखंड पर्वत की हिममंडित शृंखला पर पहुँचे। उनमें से पाँच भाइयों ने किन्नौर में अपना स्थान बनाया, जबकि दो भाई उसी क्षेत्र में लुप्त हो गए। एक भाई ने डीम नामक गाँव के समीप नगेढ़ वन में मौहरू के वृक्ष में अपना स्थान बना लिया। दूसरा भाई शेर का रूप धारण कर तिंदर, जुआग और ढमार गाँवों के साथ-साथ जंगल मार्ग से होते हुए स्रोहण गाँव पहुँचा और वहाँ के देवता जलांडी से रहने के लिए स्थान माँगा। स्थान न मिलने पर उसने निरमंड जाकर देवी अंबिका से आशीर्वाद प्राप्त कर, रामगढ़ में नातली नाग से, उससे आगे पंजवीरों से और फिर डमैहड़ी गाँव में देव नगेला से अपने लिए स्थान माँगा। देव नगेला ने उसे सूमा गाँव के समीप एक झाड़ी में रहने के लिए जगह दे दी। वहाँ वह कभी सिंह के रूप में तो कभी नर रूप में प्रकट होने लगा। वह क्षेत्र किसी दुराचारी व्यक्ति का था। देवता ने उस पर लोहे के ओले बरसाकर उसका अंत कर दिया। कहते हैं उस व्यक्ति की सात रानियाँ थीं, जिनमें से छह को बावली से पानी भरते समय देवता ने उसी में डुबो दिया। सातवीं रानी घर पर दही मथ रही थी तो मथने के बाद जैसे ही उसने मक्खन निकालने के लिए घड़े में हाथ डाला उसमें बिच्छू और साँप निकले, जिन्हें देखकर रानी ने भय से ही प्राण त्याग दिए। तब वहाँ के लोगों ने देवता के चमत्कारों से प्रभावित होकर उस स्थान पर उस नारसिंह देवता की स्थापना की जिसे कामदेव का अवतार और संतानदाता माना जाता है।

पंज वीर

गाँव : ढौल़, तहसील : निरमंड।
मूल स्थान एवं मंदिर : ढौल़।
स्थापत्य : काठ-कुणी शैली में निर्मित एक कक्ष का मंदिर लगभग 100 वर्ष पुराना है, जिसकी स्लेटों की ढलानदार छत के शिखर पर कुरड़ है। इसमें पाँच पांडवों की प्रस्तर-निर्मित तीन फुट ऊँची प्रतिमाएँ स्थापित हैं।
प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में समिति।
न्याय प्रणाली : अंबिका की न्याय प्रणाली के समान।



पूजा : ढौल़ गाँव के लोग बारी-बारी से प्रतिदिन प्रातः-सायं जड़ी धूप से देवता की पूजा करते हैं।
रथ व मोहरे : नहीं हैं, इसके स्थान पर सांकलें हैं।
मेले-त्योहार : ढौल़ की पूजा जो कई वर्षों में एक बार होती है और तीन दिनों तक चलती है। इस अनुष्ठान में भैंसे और बकरे की बलि दी जाती है।
जनश्रुति : हिमाचल प्रदेश में पाँच पांडवों को पंजवीर कहा जाता है। प्रदेश भर में पांडवों के अनेक मंदिर हैं जो पंजवीर मंदिर के नाम से प्रसिद्ध हैं। ऐसा ही एक स्थान गाँव ढौल़ में है। पंजवीरों ने देवता नारसिंह, चंभू कशोली आदि कई देवताओं को मार्गदर्शन दिया है।

कुल्लू ज़िला के जो देवता प्रवास पर जाते हैं वे यहाँ अवश्य आते हैं। इसलिए इसे देवताओं का तीर्थ स्थान माना गया है।

परशुराम

गाँव व तहसील : निरमंड।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : निरमंड।

स्थापत्य : प्रस्तर एवं काष्ठ निर्मित तिमंज़िला कोठी लगभग 2000 वर्ष पुरानी है। इसके चारों ओर किलाबंदी की गई है। कोठी की छत स्लेटों की है और शिखर पर



कुरड़ लगा है, जिसके मध्य में द्वादशदल कमल के सदृश ताँबे का कलश स्थापित है। चारों ओर लकड़ी की झालरें लगी हैं। कोठी के आँगन में हवन कुंड है। मुख्य द्वार प्रस्तर निर्मित है, जिसमें मोटा काष्ठ-फलक लगा है। द्वार के प्रस्तरों पर सुन्दर नक्काशी की गई है। कोठी की ऊपरी मंज़िल के काष्ठ पर कलाकृतियाँ उकेरी गई हैं। धरातल मंज़िल के मध्यद्वार के भीतर सात कमरे भूमिगत हैं। सातवें ऋक्ष में भगवान् परशुराम की समाधि है, जिसका द्वार भूंडा महायज्ञ के अवसर पर ही खुलता है।

अधिकार क्षेत्र : गाँव निरमंड, रल़ू, सुनैर, निशानी, मातला, मरैहड़ी, कथांडा, पुजारली, भाल़सी, खैर, घाटू, उर्टू, देउगी, बुछैर, कोयल, बायल, ध्वांश, डाबर।

प्रबंध : देवी अंबिका के अधीन।

न्याय प्रणाली : देवी अंबिका की लागू होती है।

पूजा : नहीं होती।

रथ : नहीं है।

मोहरे : अष्टधातु-निर्मित एक विशाल प्रतिमा।

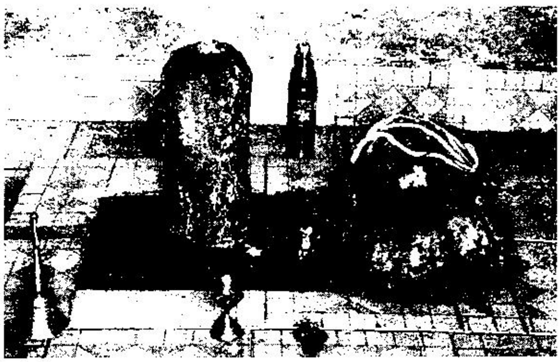
मेले-त्योहार : पूर्व में 12 वर्ष के अंतराल में भूंडा महायज्ञ के आयोजन की परम्परा थी। अब यह यज्ञ लम्बे समय बाद ही होता है। भूंडा यज्ञ किसी समय नरबलि का अनुष्ठान कहलाता था। ऊँची चोटी से रस्सा तान कर उस पर काठ की घोड़ी बांधकर 'बेडा' जाति के आदमी को नीचे सरकाया जाता था और उसके बचाव के लिए दोनों टाँगों में रेत की बराबर भार की थैलियाँ बांधी जाती थी। पुराने समय में यदि वह गिरकर मर जाता तो बलिदान होता अन्यथा बच जाता तो उसे मुँह मांगे उपहार मिलते थे। यह आदिम अनुष्ठान चार दिनों तक चलता है। इसमें कई कर्म-कांड और विधि-विधान होते हैं जिनमें बाहरी सराज और बुशहर के हज़ारों लोग भाग लेते हैं। अब आदमी की जगह रस्से पर बकरा डाला जाता है। इस भूंडा यज्ञ, परशुराम के स्थान तथा अन्य कई देवताओं का स्थल होने के कारण ही निरमंड इतिहास प्रसिद्ध रहा है।

जनश्रुति : महर्षि जमदग्नि और माँ रेणुका के कनिष्ठ पुत्र परशुराम बड़े वीर और शक्तिशाली थे। एक बार जमदग्नि ने रेणुका के सहस्रार्जुन पर मोहित होने के कारण उन्हें प्राणदंड देने की इच्छा से, ज्येष्ठ पुत्र से लेकर क्रमशः सभी पुत्रों को माँ का वध करने का आदेश दिया। सभी ने मातृहंता का अपराधी बनने से इनकार कर दिया। अंत में परशुराम ने पिता की व्याकुलता को देखते हुए अपनी माता का वध कर दिया। पिता ने प्रसन्न होकर वर माँगने के लिए कहा तो उन्होंने माता के जीवित हो जाने का वर माँगकर उन्हें पुनः जीवित करवा दिया। परन्तु माता के वध से उद्विग्न परशुराम तपोयोग्य भूमि खोजते हुए इधर-उधर भटकने लगे। अंत में हिमालय के इस निरमंड नामक स्थान पर पहुँच कर परशुराम ने 12 वर्षों तक तपस्या करने के पश्चात् आत्मतुष्टि के लिए *'शांत'* नामक यज्ञ किया। तत्पश्चात् वह महेंद्राचल पर बने अपने आश्रम में चले गए। इसी बीच देवासुर संग्राम में उन्होंने देवताओं को

विजय दिलाकर उनका स्वर्ग वापिस दिलाया। जब कार्तवीर्य अर्जुन के पुत्रों ने कामधेनु गाय न देने पर जमदग्नि ऋषि को मार दिया, उस समय माँ रेणुका ने 21 बार छाती पीटते हुए सती होना चाहा, परन्तु भृगु ऋषि ने अपनी मृत-संजीवनी विद्या से जमदग्नि ऋषि को जीवित कर दिया। माँ के विलाप से पीड़ित परशुराम ने यह प्रण लिया कि वह 21 बार क्षत्रियों का नाश करेंगे। तब इन्होंने कार्तवीर्य के सभी पुत्रों का वध किया तथा जिन क्षत्रियों ने उसका साथ दिया था, उन सबका भी नाश कर दिया। इस प्रकार परशुराम ने इक्कीस बार क्षत्रिय वंश का नाश किया। उसी संहार-लीला के दौरान वे सतलुज घाटी के निरमंड में आए और वहाँ के क्षत्रियों का विनाश कर उनमें से कुछ क्षत्रियों को बलात् ब्राह्मण बनाया। लोक विश्वास है कि उन्होंने उस समय निरमंड के अस्सी 'खश' परिवारों को ब्राह्मण बनाया था। इस सारी घटना के बाद परशुराम ने बारह वर्ष पुनः तप कर यहाँ अंबिका माता के आदेशानुसार *'भूण्डा'* महायज्ञ किया। तदुपरांत वह अपने आश्रम में चले गए। उसके बाद रामायण काल में सीता स्वयंवर के समय जब उन्हें विश्वास हो गया कि भगवान ने राम के रूप में स्वयं अवतार लिया है तो अपने धनुष तथा फरसे का त्याग कर वह पुनः उत्तराखंड की ओर निकले और निरमंड में उन्होंने *'बड़ौजी'* नामक यज्ञ किया। तत्पश्चात् यज्ञ संस्कृति का प्रचार-प्रसार करने के उद्देश्य से परशुराम बुशहर के क्षेत्र में भ्रमण पर निकले। वहाँ उन्होंने शिंगड़ा, शनेरी, लालसा और डंसा में अपनी ठहरियाँ (स्थान) स्थापित कीं। उन ठहरियों में उन्होंने अपने अनुयायियों को भूमिदान देकर बसाया तथा उन्हें यज्ञ करने का आदेश दिया। तब से हर बारह वर्ष पश्चात् इस क्षेत्र में भूंडा का आयोजन होता आ रहा है। आगे चलकर परशुराम शिमला जनपद के नंडला, टोडड़ा व रोहड़ू क्षेत्रों में भी गए। सारे हिमालय की यात्रा करके वह पुनः निरमंड पहुँचे तथा एक गुफा में तपस्या-लीन हो गए। उनके अनुयायियों ने गुफा के गिर्द किलानुमा कोठी बनाई जो *'लौश कोठी'* के नाम से विख्यात है। उनके भक्तों ने परशुरामजी की अष्टधातु की त्रिमुखी मूर्ति बनाकर गुफा में रख दी। इस मूर्ति को गुफा से केवल भूंडा के अवसर पर ही बाहर निकाला जाता है।

पुंडरी नाग

गाँव व तहसील : निरमंड, टकोल मुहल्ला।
मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : टकोल मुहल्ला।
स्थापत्य : मंदिर लगभग 300 वर्ष पुराना था, पाँच वर्ष पूर्व उसे तोड़कर सीमेंट और बजरी से नवनिर्मित किया गया। इसकी छत पर चादरें लगाई गई हैं। मंदिर में शिवलिंग स्थापित है।



अधिकार क्षेत्र : टकोल मुहल्ला।
प्रबंध : टकोलड़ खुण्डा के शांडिल्य गोत्रीय ब्राह्मण की देखरेख में कारदार की नियुक्ति।
पूजा पद्धति : प्रतिदिन प्रातः सायं धूप-दीप से।
मोहरे : गर्भगृह में पत्थर की पिंडी है।
मेले-त्योहार : माँ अंबिका के सभी पर्वों में भागीदारी।

बड़ासन देवी

गाँव : बाड़ी, तहसील : निरमंड।
मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : बाड़ी।
शाखा मंदिर : गाँव च्वाख, शाठाड़।
स्थापत्य : एक मंज़िल व एक कक्ष का यह मंदिर काष्ठ व प्रस्तर से निर्मित है। स्लेटों से युक्त इसकी छत ढलानदार



है, जिसपर कुरड़ लगा है। मंदिर के काष्ठ द्वार पर सुन्दर नक्काशी की गई है।

अधिकार क्षेत्र : सम्पूर्ण बाड़ी पंचायत।

प्रबंध : कारदारी अध्यक्षता में समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।

पूजा : प्रातः-सायं जड़ी-धूप, बेठर व गुग्गुल धूप से।

रथ : चौरस आधार वाला, शिखर की ओर तिरछा।

मेले-त्योहार : श्रावण चार प्रविष्टे को चिमटी मेला।

जनश्रुति : घटना उस समय की बताई जाती है जब निरमंड में राणाओं का शासन था। उनमें से एक राणा निरमंड से चार किलोमीटर दूर सभौर में रहता था। वह देवी अंबिका का पूर्ण भक्त था। एक बार प्रातः जब वह नित्य-नियम से देवी की उपासना कर रहा था तो एक कन्या उसकी गोद में आकर बैठ गई। राणा ने उससे पूछा कि वह कौन है। कन्या ने कहा 'मूंआ सौरगे चूड़ी' यानी मैं स्वर्ग से आई हूँ। वह कन्या राणा के घर में ही रहने लगी। समय के फेर से कुछ दिनों बाद राणा अहंकारी हो गया। उसने देवी की पूजा-अर्चना छोड़ दी और लोगों से कहा कि इस क्षेत्र में देवी अंबिका का नहीं, अपितु उसका राज चलेगा। राणा के अहंकार को देखकर देवी अंबिका ने उसका समूल नाश कर दिया। उसके घर में केवल स्वर्ग से आई कन्या ही बच पाई। राणा ने मरने से पूर्व उसे निरमंड में माँ के पास जाने को कहा। लेकिन देवी ने उसे शरण नहीं दी। तब वह कन्या रामगढ़ में नातली नाग के पास गई। नाग ने भी उसे अपने पास रखने से मना कर दिया। फिर वह बौहड़ में पाँच वीरों के पास गई। उन्होंने उसे बहन मानते हुए चवाखो नामक स्थान पर रहने के लिए जगह दी। कन्या को वह स्थान पसंद नहीं आया और वह आगे जाकर रूणू ज़ान (चट्टान) पर आकर रोने लगी। यहाँ से उसे शठाड़ गाँव नज़र आया, जहाँ ब्राह्मणों के साठ परिवार रहते थे। कन्या ने उनसे रहने के लिए स्थान मांगा। अपनी विद्वता के घमंड में उन्होंने कन्या का तिरस्कार किया। तब उसने ब्राह्मणों को शाप दिया, जिससे उनका सर्वनाश हो गया। कन्या वहाँ से सभौर की ओर वापिस चल पड़ी। रास्ते में उसे शठाड़ गाँव के हरिजन समुदाय का एक व्यक्ति मिला। वह कन्या को अपने घर ले आया। कन्या उसके घर में आकर लुप्त हो गई। शठाड़ के उस परिवार ने तब उसकी पूजा आरम्भ की, बाद में लोगों ने यहाँ देवी की कोठी बनाई, जिसमें देवी के मोहरे आदि रखे। लुप्त होने के बाद कन्या बाड़ी पहुँची। वहाँ एक दुष्ट 'मुआणा' रहता था। कन्या ने उसका भी नाश कर दिया। देवी ने गाँव के लोगों को स्वप्न में दर्शन दिए, जिससे लोगों को खेल आने लगी। उसकी 'पूछ' के लिए गाँव वाले नोर के पंडित के पास गए। उसने बताया कि यहाँ कोई देवी आई है। लोगों ने यहाँ मंदिर का निर्माण करके देवी की स्थापना की और बाड़ी गाँव के कारण वह देवी बड़ासन के नाम से जानी जाने लगी।

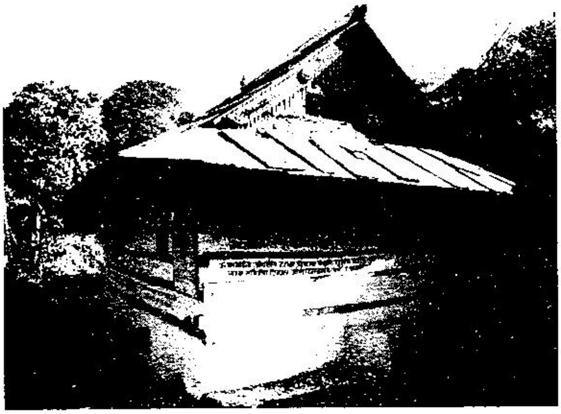
बना देऊ

गाँव व तहसील : निरमंड।

मूल स्थान, मंदिर व भंडार : सरकोटी मुहल्ला।

शाखा मंदिर : नई नगरी मुहल्ला निरमंड में देवता की कोठी व ठहरी।

स्थापत्य : एक मंज़िला मंदिर लगभग 400 वर्ष पुराना है। प्रस्तर व लकड़ी से बना यह मंदिर काठकुणी शैली का है।



स्लेटों से आच्छादित इसकी ढलवाँ छत के ऊपर कुरड़ लगा है। मंदिर के बाहरी तथा गर्भगृह के द्वार काष्ठ निर्मित हैं, जिन पर सुंदर कलाकृतियाँ उकेरी गई हैं। मंदिर परिसर का मुख्य द्वार तराशे पत्थरों से बना है।

रथ : आधार चौरस, ऊपर को तिरछा।

मोहरे : दस।

मेले-त्योहार : काव छठ, तीसरे या चौथे वर्ष पौष मास में गौणू पूजा, महाशिवरात्रि पर्व।

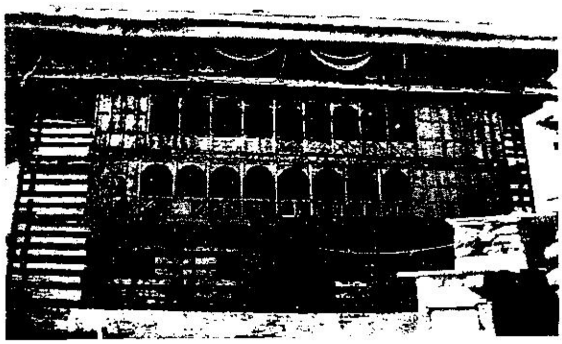
जनश्रुति : भगवान परशुराम ने बारह वर्षों की तपस्या के बाद निरमंड में यज्ञ करने के उद्देश्य से ब्राह्मणों को विभिन्न स्थानों से आमंत्रित किया। यज्ञ की समाप्ति पर जब वे अपने-अपने घर जाने लगे तो परशुराम ने उन्हें निरमंड में ही रहने के लिए बाध्य किया। तब उन ब्राह्मणों ने अपने-अपने इष्ट देवों का स्मरण कर उनका आह्वान किया। देवता अपने भक्तों की प्रार्थना से प्रसन्न होकर विशिष्ट चमत्कार दिखाते हुए वहाँ प्रकट हुए। जिसका इष्ट जहाँ उत्पन्न हुआ, वह ब्राह्मण उसी स्थान पर आकर बसा और अपने इष्टदेव के लिए मंदिर का निर्माण किया। बना देऊ का मंदिर निरमंड के शीर्ष मुहल्ले सरकोटी में है जहाँ कशनाण खुंडे (खानदान) के लोग रहते हैं। कहा जाता है कि पहले इस मंदिर परिसर में गायें चरने आती थीं और एक स्थान पर स्वतः दूध बहा देती थीं। जब लोगों ने गायों को ऐसा करते देखा तो उस स्थान की खुदाई की। खुदाई करने पर वहाँ एक प्रस्तर का शिवलिंग निकला जिसके गिर्द, बाद में मंदिर बनाया गया। इस मंदिर की सारी व्यवस्था अब भी कशनाण खुंडे के लोग ही देखते हैं।

बूढ़ा महादेव

गाँव : निथर, तहसील : निरमंड।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : निथर।

स्थापत्य : काठकुणी शैली में बना एक मंज़िल का मंदिर लगभग 400 वर्ष पुराना है। इसकी छत स्लेटों से ढकी है और शिखर पर कुरड़ लगा है तथा किनारे पर मेरु बना है।



कुरड़ के मध्य में कलश स्थापित है। परिसर में पत्थर के चक्के बिछे हैं। गर्भगृह के काष्ठ-द्वार पर कलात्मक आकृतियाँ उकेरी गई हैं। मंदिर के साथ ही चार मंज़िल की कोठी है, जिसमें 12 कक्ष हैं। सबसे ऊपर की मंज़िल में 40 x 10 फुट का सभागार है। कोठी का द्वार तराशे पत्थरों से बना है, जिसमें लकड़ी का मजबूत फलक लगा है।

अधिकार क्षेत्र : निथर : देहरा, धनाह, चेबड़ी, आनस, झली, धरोली, शकरोली, चरमाड़ा, फ्डैहर, मौणी, शनाह, एडशी, शर्ची तथा खिदवेचा गाँव।

प्रबंध : कारदारी अध्यक्षता में समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।

पूजा : प्रतिदिन, प्रातः-सायं जड़ी धूप से।

रथ : नीचे से चौरस, शिखर की ओर तिरछा।

मोहरे : पंद्रह।

मेले-त्योहार : 9 आषाढ़ को रात्रि पर्व जागरा मेला निथर। इस मेले के आयोजन के सम्बंध में लोगों का मानना है कि कदाचित् 8 प्रविष्टे भाद्रपद को तांदी नामक राणा ने किसी महिला से अभद्र व्यवहार किया। इस घटना से पीड़ित महिला अपनी बेइज्जती न सह सकी और दो दिन बाद 11 प्रविष्टे भाद्रपद को उसने बूढ़ा महादेव मंदिर में जाकर न्याय की प्रार्थना करने के पश्चात् कुपड़दड़ में आत्मदाह कर लिया। जीव-हत्या के दोष से राणा का सम्पूर्ण परिवार नष्ट हो गया। अतः धर्म-सत्य की विजय की स्मृति में इस दिन मेले का आयोजन किया जाता है। मेले का आरम्भ भाद्रपद की संक्रांति को होता है। इस दिन बूढ़ा महादेव का रथ सज-धज कर शकरोली, शोचा, धनाह व चेवड़ी गाँवों की परिक्रमा पर निकलकर चौथे दिन कुपड़दड़ पहुँचता है। 9 प्रविष्टे तक देवता वहीं विश्राम करता है। दसवें दिन देवता को 'बड़ाड़ा' लगता है अर्थात् शव के ऊपर की चादरें चढ़ाई जाती हैं। ग्यारहवें दिन चेवड़ी और धनाह गाँव के लोग वाद्ययंत्रों के साथ कुपड़दड़ पहुँचते हैं तो यहाँ मेला लगता है। 12 प्रविष्टे को देवता, निथर मंदिर में पहुँचता है। इसके अतिरिक्त संक्रांति को घृतमा पर्व भी मनाया जाता है।

जनश्रुति : हज़ारों वर्ष पूर्व शोचा गाँव का एक किसान खेत में हल चला रहा था। अचानक उसके फाल में एक मोहरा फंसकर बाहर निकल आया। उसने वह मोहरा घर लाकर काउणी (कंगणी) से भरी कोठरी में रख दिया। कुछ समय बाद जब किसान ने कोठरी खोली तो उसे आश्चर्य हुआ कि वह तो आधी ही रह गई है। उसने देखा कि चींटियाँ वहाँ से काउणी ले जाकर निथर में ढेर लगा रही हैं। किसान ने यह घटना लोगों को सुनाई। तब लोगों ने वहाँ देवता के मंदिर का निर्माण किया। लोक मान्यता है कि इस मंदिर के गर्भगृह में शिवलिंग स्वतः प्रकट हुआ है। लोगों का यह भी कहना है कि इस मंदिर में कोई साधु भगवान शिव की तपस्या करते हुए वृद्धावस्था में यहीं समाधिस्थ हो गया था जिस कारण इसका नाम बूढ़ा महादेव पड़ा।

बौड़ो देऊ : विष्णु नरैण

गाँव व तहसील : निरमंड।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : निरमंड गाँव के विष्णु व परशुराम मुहल्लों में।

स्थापत्य : काष्ठ तथा प्रस्तर निर्मित एक कक्षीय साधारण मंदिर लगभग सौ वर्ष पुराना है, जिस पर स्लेटों की छत है।

अधिकार क्षेत्र : समस्त निरमंड गाँव।



प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।

पूजा पद्धति : भादों शुक्ल एकादशी व कृष्ण चतुर्दशी को दोनों मुहल्लों में देवता की पूजा की जाती है।

मेले-त्योहार : भाद्रपद कृष्ण चतुर्दशी व शुक्ल एकादशी को कादशिए जाच, जागरौ, राच परैशी, दौश, जड़ोहगी।

जनश्रुति : निरमंड में चनाल समुदाय की एक स्त्री मोधी ने सर्वप्रथम विष्णु भगवान की भक्ति की थी। इससे प्रसन्न होकर प्रभु ने उसे दर्शन दिए तो उसने उनसे अपने घर पधारने का वचन ले लिया और उनके स्वागत के लिये भजन-कीर्तन कर रात भर जागरण किया। इसके आयोजन में कोली समुदाय और जोगिनियों ने उसकी सहायता की। इसी जग का नाम बाद में *'जागरा'* पड़ा। जब भगवान

उसके घर आए तो उसने श्रद्धाभक्ति से पूजन कर यथा सामर्थ्य भेंट अर्पित की। अन्य देवताओं को जब इस बात का पता चला तो उन्होंने विष्णु भगवान को अपने समाज से बहिष्कृत कर दिया। यह सुनकर प्रभु जंगल में चले गए और अग्नि को कचड्डे पत्थर (चकमक पत्थर) में तथा जल को गरुआ नामक पौधे की नाल में छिपा दिया। जब समस्त प्राणी आग और पानी के बिना भूखे-प्यासे मरने लगे तो सभी देवता विष्णु की शरण में आए। भगवान ने उनकी परीक्षा लेने के लिए अपने पुजारी के पास ताजा चमड़े की थैली में पानी भेजा। प्यास से व्याकुल वे देवता उस पानी को भी पीने के लिए तैयार हो गए। यह देखकर प्रभु ने तुरंत चश्मे को जल से भर दिया और देवताओं को जल पीने के लिए दिया। देवता जलपान कर संतुष्ट हुए। तब से विष्णु की *'बौड़ो देऊ'* अर्थात् 'देवताओं में सबसे बड़े देव' के रूप में मान्यता हुई। ऐसी भी धारणा है कि उसी दिन से समाज के निम्न वर्ग में बड़ा देव (विष्णु भगवान) की पूजा आरम्भ हुई।

बौड़ो देऊ के निमित्त मनाए जाने वाले पर्वों *जागरा, दौष, जड़ोगी* तथा *प्रैशी राच* में सबसे बड़ा पर्व जागरा है। इसके लिए एक मास पूर्व चनाल समुदाय के एक व्यक्ति द्वारा नगा-गर्वा नामक लकड़ी का कलश बनाया जाता है जिसे बौड़ो देऊ का प्रतीक माना जाता है। पर्व वाले दिन बौड़ो देऊ की 'ठहरी' या मंदिर परिसर में यज्ञकुण्ड व मंडप बनाकर इसके भीतर ईशान स्थापित कर अष्टकोटि देवताओं का आह्वान करते हुए उनकी प्राण-प्रतिष्ठा की जाती है। दूर-दराज से आए परिजनों का स्वागत कर सायंकाल में कलश को सिर पर उठाकर नचाया जाता है।

अगले दिन पहले मण्डप के साथ में ही दूसरा मण्डप बनाया जाता है जिसमें 50 से 70 दीपक प्रज्वलित किए जाते हैं। इस दिन अनुसूचित जातीय, क्षत्रिय तथा ब्राह्मण स्त्रियाँ उपवास रखकर इन दीपों में धार लगाकर तेल डालती हैं और मंडप में रखे कलश की पूजा करती हैं। इसके पश्चात् मंदिर या 'ठहरी' के गिर्द शिखाफेर (परिक्रमा) होती है जिसमें चारों दिशाओं में बलियाँ दी जाती हैं और पूरी रात 'छाड़ियाँ' गाई जाती हैं। विदाई के दिन सुबाह मडैओ-फूल और पत्तियों की मालाएँ बनाई जाती हैं, जिन्हें देवता का गूर छेरते हुए (देवशक्ति का प्रवेश) अपने गले में पहनता है। फिर आमंत्रित व्यक्तियों में से किसी एक के गले में वह माला पहना देता है। जिसके गले में माला डाली जाती है भविष्य में उसे जागरा करना पड़ता है। इसके बाद सभी परिजनों व देवी-देवताओं को विदा किया जाता है।

भडराई नाग

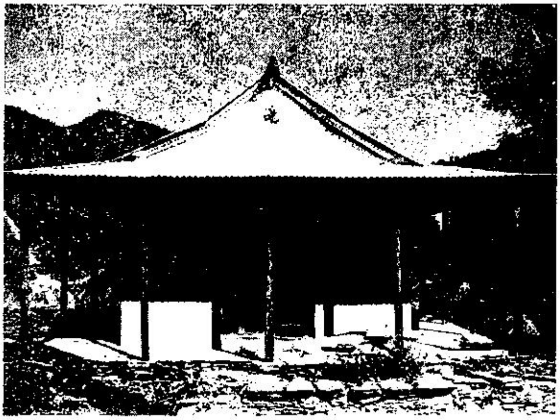
गाँव : ढाढसा, तहसील : निरमंड।

मूल स्थान : बागा सराहण।

मंदिर व भंडार : ढाढसा।

स्थापत्य : एक कक्ष का साधारण मंदिर लगभग 20 वर्ष पुराना है, जिसके निर्माण में सीमेंट का प्रयोग हुआ है और छत पर चादरें बिछी हैं।

जनश्रुति : बूढ़ी नागिन के नौ बच्चों में से एक भडराई नाग जब सरेउलसर से अपने लिए स्थान ढूँढने निकला तो



उसने बागा सराहण में अपना आश्रम बनाया। इस क्षेत्र में जलांडी देवता का प्रभुत्व था। एक दिन जब नाग देवता तपस्या कर रहा था तो जलांडी देवता ने उस पर गज से प्रहार किया। इससे नाग की सोने की थाली टूट गई। क्रोधित नाग ने अपना बरछा घुमाया जो जलांडी के गाल

में जा लगा। दोनों ओर से प्रहार चलते रहे। अपनी विजय न देखकर अंत में भडराई नाग अपने आश्रम को तहस-नहस करके, भालू का रूप धारण कर नीचे की ओर भागा और कुर्पन खड्ड के तट पर डांगरी स्थान की ज़ान (चट्टान) के पीछे छिप गया। जलांडी देवता उसका पीछा करते हुए वहाँ भी आ पहुँचा और उसने चट्टान पर प्रहार किया, जिससे उस चट्टान में दरार पड़ गई। यहाँ पर जलांडी ने अपनी सीमा बाँध दी। तब भडराई नाग ने इस स्थान से आगे जाकर कई चमत्कार दिखाए। प्रभावित होकर लोगों ने ढाढसा में नाग देवता के मंदिर का निर्माण किया।

भढारलू देव

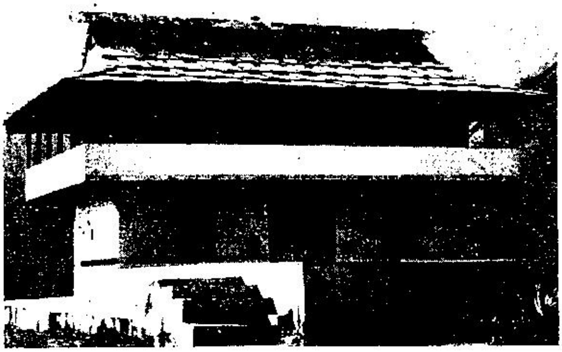
गाँव : कोट, तहसील : निरमंड।

मूल स्थान व मंदिर : कोट, **भंडार :** अरसू।

शाखा मंदिर : देऊड़, बगना, टिकरी।

स्थापत्य : पहले पाँच मंज़िला पुराना मंदिर था। उसी के स्थान पर वर्तमान में काठकुणी शैली का दो मंज़िल का एकांत मंदिर है। यह नया मंदिर लगभग 15 वर्ष पहले पुरानी शैली में ही बनाया गया है।

अधिकार क्षेत्र : गाँव देथवा, अरसू, टिकरी, खजेडा, बगना, लौणी, खरै, ब्यूणी, कलारस तथा कोट।



प्रबंध : कारदारी अध्यक्षता में समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।

पूजा : प्रातः-सायं सूक्ष्म हवन विधि से।

रथ : खड़ी शैली।

मोहरे : ग्यारह। रथ में दस मोहरे स्थापित होते हैं तथा एक मंदिर में आसीन रहता है। इनमें से पाँच अष्टधातु के, चार चाँदी के व दो पीतल के हैं।

मेले-त्योहार : 19 वैशाख को चड़ाकोट मेला, 26 ज्येष्ठ को अरसू में राय जाच, भादों मास में कोट रिहाई मेला, आश्विन मास में अरसू में शैरी मेला।

जनश्रुति : देवभारथा के अनुसार एक बार बाड़ी क्षेत्र का 'मुआणा' चड़ाकोट नामक स्थान पर 18 हलों से अपनी ज़मीन की जुताई कर रहा था। इसी दौरान अंतिम हल के फाल में कुछ फँस गया। हलवाहा के ज़ोर लगाने पर फाल के साथ एक मोहरा बाहर निकला, जिसके माथे पर हल की चोट से छेद हो गया था। मुआणा उसे अपने घर ले आया और अनाज के कोठे में रख दिया। प्रातः वह मोहरा उसे कोठे के ऊपर दिखाई दिया। उसने कई बार मोहरे को अन्दर रखा, परन्तु वह उसे बाहर ही मिलता रहा। तब उसने इस सम्बंध में नोर के ब्राह्मणों से पूछा गया। उन्होंने देव-दोष बताकर उसे वह मोहरा वहीं रखने को कहा, जहाँ से वह मिला था। मुआणा उसे चड़ाकोट छोड़ आया। एक दिन अरसू का राणा चड़ाकोट से खेगसू जा रहा था कि उसे वह मोहरा दिखाई दिया, परन्तु उसे बिना उठाए वह आगे निकल गया। थंथल नामक स्थान पर पहुँचकर उसे आगे की ओर अँधेरा और पीछे प्रकाश दिखाई देने लगा। तब उसने लौटकर वह मोहरा उठाया और बधना होते हुए अरसू पहुँचा। अरसू में भी मोहरे ने उत्पात मचाया तो नोर के ब्राह्मणों से पूछा गया। उन्होंने मोहरे को देवी अंबिका के मंदिर में ले जाने के लिए कहा। राणा ने वह मोहरा अंबिका के पास निरमंड पहुँचा दिया। वहाँ उसे भंडार में रखा गया। इसी बीच सरोहणी देवता भी स्थान प्राप्त करने की इच्छा से अंबिका के पास पहुँचा तो माँ ने उसकी परीक्षा लेने के लिए लोहे का अतितप्त कड़ाह उसे देकर शर्त रखी कि यदि वह उसे उठाकर निरमंड के चारों ओर सात फेरे लगाएगा तभी उसे स्थान मिलेगा। सरोहणी देव ने यह कर दिखाया, परन्तु बताए बिना

कड़ाही लेकर सराहन की ओर चल पड़ा। देवी अंबिका ने भढारलू को उसके पीछे भेजा तो चड़ाकोट में भढारलू ने उसे पकड़ लिया। आपस में समझौता कर सरौहणी देव अपने रास्ते चला गया, भढारलू कोट पहुँचा और वहाँ के राणा को कई चमत्कार दिखाए। तब राणा अरसू और राणा कोट ने देवता के लिए उस स्थान पर मंदिर बनाया, जहाँ चींटियों ने घेरा डाल रखा था। उसके बाद देवता अंबिका माँ के पास आया और पूर्ण वृत्तांत सुनाया। माँ ने प्रसन्न होकर दो पुजारी, दो माहते, दो मशाणे और वाद्ययंत्र देकर उसे विदा किया। इसका प्रथम नाम माटी सिंह था, क्योंकि यह मिट्टी में से निकला था और दूसरा नाम भढारलू इसलिए पड़ा क्योंकि यह देवी के भंडार में रखा गया था।

मड़ेलू देव

गाँव : भदराल, तहसील : निरमंड।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : भदराल।

स्थापत्य : काठकुणी शैली में निर्मित एक मंज़िल का मंदिर लगभग 200 वर्ष पुराना है। मंदिर के गर्भगृह के बाहर लकड़ी के स्तम्भों पर आधारित छत के नीचे खुला स्थान है। स्तम्भों पर सुन्दर नक्काशी की गई है।

अधिकार क्षेत्र : पूरी डीम पंचायत, गाँव देथवा, लाहौट, डुगा, धार व भेखवा।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में समिति।

न्याय प्रणाली : राय नाग के मुख्य न्यायाधीश द्वारा।

पूजा : प्रातः-सायं बेठर, बनेर व जड़ी धूप से।

मोहरे : यह देवता गर्भगृह में लकड़ी के स्तम्भ में लोहे की सांकल, दराटी, कील व कंगन के रूप में सुशोभित है। इसका मोहरा नहीं है।

जनश्रुति : देव मड़ेहलू रायनाग के न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश तथा दंडाधिकारी है। सभी ओर से असफल हुआ व्यक्ति न्याय के लिए इसके पास आता है और न्याय प्राप्त कर संतुष्ट लौटता है, ऐसी मान्यता है।

मारकंडा ऋषि

गाँव : ईशवा, तहसील : निरमंड।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : गाँव ईशवा (शलाट)।

शाखा मंदिर : गही कुकड़ी में।

स्थापत्य : काठकुणी शैली में बना तीन मंज़िल का मंदिर लगभग 15 साल पहले पुराने मंदिर जैसा ही बनाया गया है। काष्ट पर चित्रकारी है।

अधिकार क्षेत्र : गाँव ईशवा, शमानी, सिंकन, टारवा, बड़ना, दराढ़, शलाट, डुगवी, पजैंडा।

प्रबंध : कारदारी अध्यक्षता में समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से पूछ, लड्डू व पर्चियों की विधि से।





पूजा : प्रातः-सायं धूप-दीप से।

रथ : चिड़ी शैली।

मोहरे : कुल तेरह, जिनमें से आठ रथ में लगते हैं, शेष पाँच मंदिर में ही रहते हैं।

मेले-त्योहार : 14 प्रविष्टे वैशाख को ईशवा में निरशू मेला, 20 प्रविष्टे वैशाख को नोर मेला, हर तीसरे साल नोर में एक विशेष पर्व मनाया जाता है और फाल्गुन संक्रांति को गही कुकड़ी में 'त्वार' पर्व।

जनश्रुति : ऋषि मृकंडु के पुत्र मार्कंडेय भगवान शंकर के परमभक्त थे। उनकी आयु केवल 16 वर्ष थी, जब अपनी तपस्या और शिव की उपासना से उन्होंने अमरत्व प्राप्त किया। मार्कंडेय ऋषि का एक मंदिर नोर ग्राम पंचायत के ईशवा और एक अन्य नोर गाँव में है। देवता की उत्पत्ति के सम्बंध में भारथा के अनुसार कलियुग के आरम्भिक चरण में लाहुल-स्पीति के लाहुल-बझाउड़ नामक स्थान में एक चट्टान पर स्वर्ग से एक दिव्य शक्ति उतरी और पिंडी का रूप धारण कर लिया। उस पिंडी ने साधु वेश में सात रूप धारण किए। कहा जाता है कि इन सातों ने मार्कंडेय ऋषि के विभिन्न रूपों में बझाउड़ त्रिलोकीनाथ, भरास, मंगलौर, बालागढ़, ईशवा तथा नोर में अपने स्थान ग्रहण किये।

इन्होंने चमत्कार दिखाने के उद्देश्य से झाड़ी में एक शिला पर गज़ से प्रहार किया और सात सरोवर उत्पन्न कर दिए। किसी ब्राह्मण कन्या ने यह देखा तो सोने की कटोरी में गंगाजल और चाँदी की कटोरी में दूध-घी लाकर उन्हें अर्पित किया। ऐसा करने से उसे सुख-समृद्धि मिली। एक भाई ने इसी स्थान पर समाधि ले ली। बाकी साधु त्रिलोकीनाथ आए। वहाँ पत्थर पर ज्योति प्रज्वलित की। एक साधु वहीं समाधिस्थ हो गया। अन्य चलते-चलते रोहतांग जोत पहुँचे, जहाँ से भेखलीधार दिखाई दी। आगे चलकर ढूँगरी पहुँचे, जहाँ उनकी मुलाकात ढूँगरी देवी से हुई, जिसने उन्हें 'बैठा राज' देना चाहा, परन्तु वे इसे अस्वीकृत कर भेखली देवी के पास गए। उसने भी 'बैठा राज' देना चाहा, जिस पर वे वहाँ से आगे चले और शमशरी नामक स्थान पर पहुँचे। यहाँ मुंगडू राणा का वर्चस्व था। वह बड़ा दुष्ट और अत्याचारी था। अपनी शक्तियों से उसका अंत कर उनमें से एक ने आगे जाकर थरास नामक स्थान पर समाधि ले ली। शेष चारों आगे चलकर बंजार तहसील में मंगलौर नामक स्थान पर पहुँचे, जहाँ एक ऋषि समाधिस्थ हो गया। बाकी ऋषि बंजार के साथ बहने वाली खड्ड के किनारे बलेगाड़ नामक स्थान पर पहुँचे। वहाँ देवी बड़ासण का वास था। वहाँ दो दैत्यों ने आतंक मचा रखा था। देवी ने उन दैत्यों को मारने के बदले में सारा राज देने की शर्त रखी। ऋषियों ने अपनी शक्ति से उनको मार गिराया, परन्तु देवी ने पूरा राज देने के बजाए केवल चलता राज देना चाहा। क्रोध में ऋषियों ने गज़ से प्रहार कर उस देवी को खनोर के वृक्ष के नीचे फेंक दिया और एक ऋषि ने वहाँ अपना वास बना लिया।

शेष दो ऋषि जलोड़ी जोत, सरेउलसर से कतरूणी ज़ान, ख्वांडा गही (तहसील आनी) से भी आगे चलकर मरूटी सेरी पहुँचे, जो काली नाग का स्थान था। उसने उन्हें चलता राज देना चाहा, परन्तु उसे अस्वीकार कर अन्य कई स्थानों पर चमत्कार दिखाते हुए वे ईशवा गाँव के पीछे शाईधार पहुँचे। वहाँ के राणा के दो ग्वालों ने उन पर मिट्टी के गोले बरसाए जो ऋषियों के शरीर पर लगते ही उपले बन गए। प्रत्युत्तर में जब ऋषियों ने उन ग्वालों पर उपले फेंके तो वे उनके शरीर को छूते ही लोहे के बन गए, जिससे वे लहूलुहान हो गए। उन्होंने घर आकर अपने मालिक को बताया तो उसने इस सम्बंध में पंडित से पूछा। उसने बताया कि ये किन्हीं दो ऋषियों का दोष है। दोष निवारण हेतु उसने ईशवा में ऋषि के निमित्त मंदिर का निर्माण करवाया। उस स्थान से दोनों ऋषि नोर गाँव पहुँचे और वहाँ के दुष्ट राणा को तरह-तरह के चमत्कार दिखाते हुए मार दिया। राणा का सारा वंश भी नष्ट कर दिया। इस प्रकार अपनी लीला दिखाते हुए एक ऋषि ईशवा में और दूसरा नोर में समाधिस्थ हो गया।

मारकंडा ऋषि

गाँव : नोर, तहसील : निरमंड।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : नोर।

स्थापत्य : काठकुणी शैली में निर्मित एक मंज़िल का मंदिर जिसकी ढलवाँ छत स्लेटों से ढकी है।

अधिकार क्षेत्र : गाँव नोर, राठो, मंजवा, बिहाडी।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में कराउक व पुजारी आदि।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से, पूछ, लड्डू, पर्चियों द्वारा।



पूजा : प्रतिदिन प्रातः-सायं पारंपरिक विधि से।

रथ : चिड़ी शैली।

मोहरे : तेरह। इनमें से आठ मोहरे रथ में लगते हैं, शेष पाँच पुजारी के निवास पर रहते हैं।

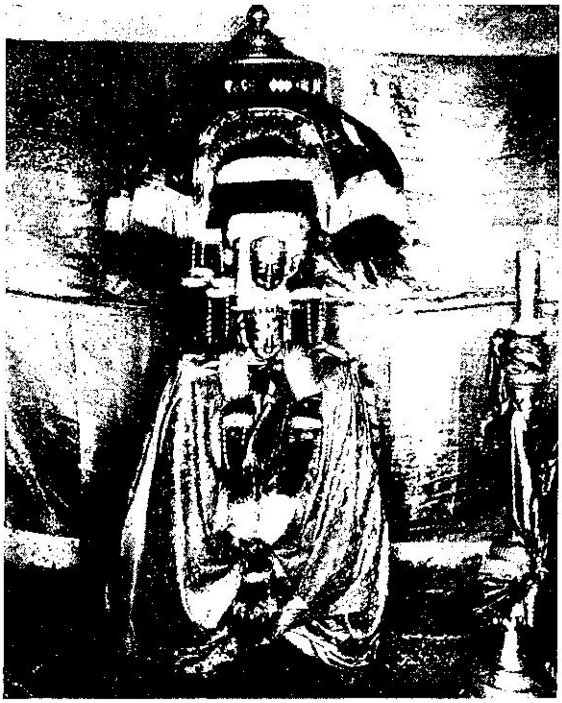
मेले-त्योहार : 20 वैशाख को नोर में मुख्य मेला, आश्विन मास में काली माता पर्वत पूजा, 2 प्रविष्टे फाल्गुन को देवता का 'त्यार' पर्व व उसी दिन पूज उत्सव, पर्याप्त साधन होने पर प्रत्येक बारह वर्ष के पश्चात् महिषासुर मर्दन यज्ञ का आयोजन।

जनश्रुति : देखें मारकंडा ऋषि गाँव ईशवा। सभी चम्भू देवताओं की उत्पत्ति एक साथ है, इसलिए इनसे जुड़ी जनश्रुति भी एक जैसी है।

मारकंडा ऋषि

गाँव : शलाट, तहसील : निरमंड।

मूल स्थान एवं मंदिर : शलाट। **भंडार :** डुगवी।



स्थापत्य : सीमेंट व कंकरीट का बना एक मंज़िल का मंदिर जिसका दरवाज़ा लोहे का है।

अधिकार क्षेत्र : गाँव शलाट, डुगवी, पजेंडा, गाड़, खोवरकोड।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से, पूछ, लड्डू या पर्चियों की विधि से।

पूजा : प्रातः-सायं धूप-दीप से।

रथ : चिड़ी शैली।

मोहरे : कुल चौदह, जिनमें से आठ मोहरे रथ में तथा छह मंदिर में रहते हैं।

मेले-त्योहार : 14 वैशाख को प्रति वर्ष शलाट में निरशू मेला, मार्गशीर्ष मास में बूढ़ी दीवाली।

जनश्रुति : देखें मारकंडा ऋषि ईशवा।

माही नाग

गाँव : ओली नाल़, तहसील : निरमंड।

मूल स्थान : बागा सराहण (चित्र)।

मंदिर एवं भंडार : ओली नाल़।

स्थापत्य : लकड़ी-पत्थर से बना एक कक्ष का साधारण



मंदिर, जिसकी छत स्लेटों की है और दीवारों पर गारे से लिपाई की गई है।

अधिकार क्षेत्र : गाँव ओली नाल़, कांडू, त्यार।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में समिति।

न्याय प्रणाली : माँ अंबिका की प्रणाली पर आधारित है।

पूजा : प्रातः-सायं जड़ी धूप से घंटा ध्वनि के साथ। पुजारी प्रातः स्नान करके साथ वाले चश्मे से जल लाकर पूजा करता है।

रथ और मोहरे : नहीं हैं।

जनश्रुति : भडराई नाग बागा सराहण में रहता था। एक बार वह वहाँ से चलता हुआ केदस के समीप कांडू गाँव में पहुँचा। वहाँ घनी बस्ती होने के कारण लोगों की चहल-पहल, किसानों के हल चलाने की आवाज़ें और साथ ही कूर्पन खड्ड का शोर उसे पसंद नहीं आया। वह वहाँ से चल पड़ा और ओली नाल़ पहुँचा। वहाँ का शांत वातावरण और जलस्रोत उसे भा गये और वह वहीं रहने लगा। कालान्तर में उस स्थान पर लोग भी बसने लगे। किसी व्यक्ति ने मकान बनाने के लिए वहाँ खुदाई का कार्य आरंभ करवाया तो भूमि में पत्थर की एक पिंडी दिखाई दी। खुदाई करनेवालों ने उसे निकालने का भरसक प्रयत्न किया, परन्तु असमर्थ रहे। इसी दौरान किसी को देव-खेल आई और नाग ने दृष्टांत देकर बताया कि वह माही नाग है। तब लोगों ने उस स्थान पर देवता का मंदिर बना दिया।

रखाऊ नाग

गाँव : धनाह, तहसील : निरमंड।

मूल स्थान : सरेउलसर।

मंदिर स्थापत्य : देवता गाँव धनाह की देवी धनेश्वरी की कोठी में स्थापित है।

मंदिर एवं भंडार : धनाह।

अधिकार क्षेत्र : गाँव धनाह, गोथना, शाणी, धरेच, थलीन, कफटा, शरठी, डवारच, मौणी, निथर।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में समिति।

न्याय प्रणाली : माँ अंबिका व धनेश्वरी की न्याय प्रणाली ही व्यवहार में है।

पूजा : दोनों समय धूप-दीप से।

रथ : चिड़ी शैली।

मोहरे : ग्यारह। रखाऊ नाग, कुईकंडा नाग, नातली नाग, ब्रह्मवीर, मशाण, बूढ़ी नागिन व पाँच अन्य नाग।

मेले-त्योहार : चैत्र मास के किसी निर्धारित दिन 'शराकड़ा' जिसमें नाग, एड़शी डुनण जलकुंड जाता है, जहाँ छेलू की बलि दी जाती है तथा पर्वत-पूजन, जल-पूजन व काली-पूजन होता है। 8 बैशाख को निरशू मेला, मार्गशीर्ष अमावस्या को बूढ़ी दयाउड़ी और इसके अतिरिक्त व्यक्तिगत सुखना के अनुसार।

जनश्रुति : यह नाग बूढ़ी नागिन के सरेउलसर में उत्पन्न 18 पुत्रों में से एक है। लोक मान्यता है कि बूढ़ी नागिन दिन में बच्चों की देख-रेख का कार्य छपारा नामक दूत को सौंपकर काम पर जाती थी। एक बार खणी बटाड़े के ऊदो नामक पंडित ने बूढ़ी नागिन की शक्ति की परीक्षा लेने के उद्देश्य से अपनी तंत्र विद्या से सरेउलसर को सुखाने का प्रयास किया। जब छपारा दूत को उसकी इस

चाल का पता चला तो उसने सरेउलसर क्षेत्र के आसपास रहनेवाले लोगों को इसकी सूचना देने के लिए लम्बी आवाज़ लगाई। इससे डरकर बूढ़ी नागिन के सभी बच्चे इधर-उधर भागे। इनमें से 'रखाऊ नाग' वहीं-कहीं रखाड़ नामक पेड़ में छिप गया। कुछ दिनों बाद वह निथर से ऊपर एडशी में डुनण नामक स्थान में आकर रहने लगा। वहाँ एक गडरिया रहता था। उसने नाग से कहा कि उसे तभी यहाँ रहने दिया जाएगा, जब वह इस स्थान पर पानी निकालेगा। नाग ने गज के प्रहार से पानी का चश्मा निकाला। इस चमत्कार को देखते हुए स्थानीय लोगों ने वहाँ मंदिर का निर्माण करवाया। नाग को यह स्थान पसंद नहीं आया और वह माँ भुवनेश्वरी से चेवड़ी नामक स्थान माँगने लगा। लेकिन माँ ने मना कर दिया। तब वह निथर गया। वहाँ महादेव ने उसे रहने की आज्ञा नहीं दी। फिर वह धनाह गया। वहाँ धनेश्वरी देवी ने स्थान देने के लिए पानी का चश्मा निकालने की शर्त रखी। तब नाग ने बरछे से शकरोली गाँव के नीचे नौ चश्मे निकाले, जिससे प्रसन्न होकर देवी ने अपने अधिकार क्षेत्र में नाग को भी पूर्ण अधिकार दे दिया। देवी के आदेश से लोगों ने यहाँ नाग के मंदिर का निर्माण करवाया।

रायनाग

गाँव : देथवा, तहसील : निरमंड।

मूल स्थान व मंदिर : देथवा।

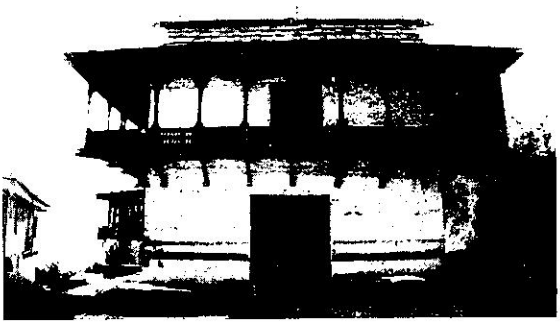
भंडार : गाँव डीम।

शाखा मंदिर : मूला, भदराल व ठारवा।

स्थापत्य : काठकुणी शैली में दो मंज़िल का मंदिर है। यह पुराना मंदिर है जिसमें काष्ठ कला भी है।

अधिकार क्षेत्र : गाँव देथवा, तंगूर, रेऊशाल, दागोट, गागन, पाकोरा, अमतुआ, नागेड़, जवा, बशलैआ, कोटी, खानी, शलोग, बुईनी, खरै, कलारस, शलुटी, डीम, शील, जुवागी, तिंदर, चमारला तथा डूमा।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में समिति।



न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से पूछ, लड्डू या पर्ची डालने की विधि से।

पूजा : प्रातः-सायं धूप-दीप से।

रथ : खड़ी शैली।

मोहरे : संख्या में कुल दस, जिनमें एक अष्टधातु का, आठ रजत के व एक पीतल का है।

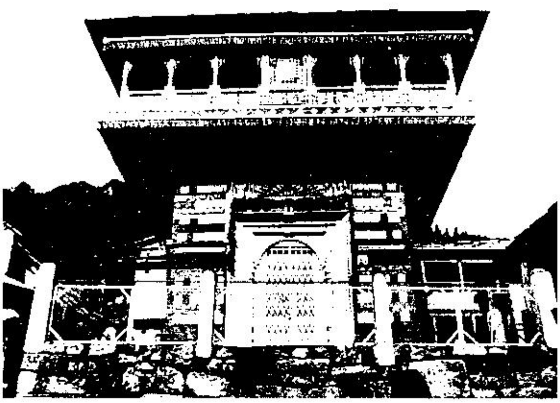
मेले-त्योहार : 15-16 वैशाख को ठारवा मेला, 26 ज्येष्ठ को अरसू में राईजाच, 6 ज्येष्ठ को खरै विरशी तथा आश्विन में शैरी मेला।

जनश्रुति : सुग्गा सरपारा नामक सरोवर से बिष्ट कन्या और जल देवता के संयोग से उत्पन्न नौ नाग सबसे पहले घमैणी थाच में एकत्रित हुए। वहाँ सबसे बड़े भाई ने सभी को विभिन्न स्थानों में जाने की राय दी, जिस कारण इसका नाम रायनाग पड़ा। गज की भाँति बड़ा शरीर होने के कारण इसे गजाई तथा सब नागों पर शासन करने से इसे शाशनी नाम से भी जाना जाता है। घमैणी से वह मूला आया जहाँ महर्षि बाल्मीकि का आश्रम था। नाग ने उनकी खूब सेवा की, जिससे प्रसन्न होकर महर्षि ने उसे चलता राज दिया और बैठा राज अपने पास रखा। आगे चलकर उसे भढरालू देव मिला। रायनाग ने उसे अपना गुरु माना जिससे प्रसन्न होकर उसने रायनाग को अपने क्षेत्र में से देथवा गाँव दे दिया। देथवा से वह ठारवा गया। वहाँ उसके चमत्कार देख कर लोगों ने नाग देवता का मंदिर बनवाया। ठारवा से वह जाओं गया। वहाँ उसने नरोड़ी और सरोड़ी दो देव-कन्याएँ देखीं। इनमें से वह

सरोड़ी को ब्याह कर ठारवा लाया, जिसकी यहाँ जोगनी रूप में स्थापना की गई।

रियासी नाग

गाँव : ढलैर, तहसील : निरमंड।
मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : ढलैर।
शाखा मंदिर : मलागड़ी खड्ड।
स्थापत्य : स्लेट से ढका ढलवाँ छतयुक्त काठकुणी शैली में बना तीन मंज़िल का यह मंदिर 15 साल पहले पुराने मंदिर को गिराकर बनाया गया है, जो पुराने मंदिर जैसा ही बना है। धरातल में खाली रथ रहते हैं, बीच की मंज़िल में पूज सजी है, ऊपर की मंज़िल में विशेष उत्सव के मोहरे हैं।
रथ : चिड़ी शैली।
मोहरे : इक्कीस। इनमें से नौ मोहरे रथ में लगते हैं, पाँच



मंदिर में रहते हैं और शेष भंडार में होते हैं।
मेले-त्योहार : वैशाख संक्रांति को विशू व दूसरे दिन झीरू मेला, ज्येष्ठ मास में सतराला, श्रावण मास में तीन दिन का मेला, मार्गशीर्ष अमावस्या को बूढ़ी दियाली, फाल्गुन संक्रांति को 'त्वार' पर्व।
जनश्रुति : देव भारथा के अनुसार बूढ़ी नागिन के नौ पुत्रों में से एक रियासी नाग भी था। जब ऊदो नामक तांत्रिक ने बूढ़ी नागिन की शक्ति की परीक्षा के उद्देश्य से सरेउलसर को सुखाने के लिए तंत्र विद्या का प्रयोग किया तो रियासी नाग ने उत्तर दिशा में घनघोर बादल पैदा कर ऊदो पर लोहे के ओले बरसाए और उसे अंधा बना दिया। तब भाइयों के साथ बंटवारे में अपने लिए सोने का पात्र रखकर भाई काशुवीर नाग को चाँदी का पात्र दिया और सरेउलसर से पानी की तूंबी भरकर व काला कंबल ओढ़कर पूर्व दिशा की ओर चल पड़ा। ख्वांडा गही व फाटी लाझेरी होते हुए डीम गाँव पहुँचकर उसने देवता दरशीड़ी से भाईचारा बनाया। आगे चलकर गाँव बुछैर के मरूटीसेरी स्थल में कुछ समय के लिए अपने भाई काली नाग के पास रुका। काली नाग ने उसे बैठा राज सौंपा और चलता राज अपने पास रखकर सीमा बाँध दी। इसके पश्चात् रियासी नाग जब ध्यान में बैठा तो उसे किसी हल चलाते किसान की हाँक सुनाई दी। क्रोधवश नाग उस स्थान को छोड़कर थाटी बील, नोर फाटी के दराट गाँव से होकर रंघाड़ी नामक स्थान पर पहुँचा। वहाँ सोलह जोगनियों को जुए में हराकर उन्हें अपने अधीन कर लिया।

मान्यता है कि आज भी नाग देवता अतिवृष्टि और अनावृष्टि में इन जोगनियों को बुलाकर इनसे मनचाहा कार्य करवाता है। आगे प्रस्थान कर शांऊई-दरोवड़ी नामक स्थान में बालरूप धारण कर ढलैर व झलैर गाँव के ग्वालों के साथ पत्थर व गोबर का स्थानीय खेल खेला। इस खेल में जब ग्वाले उस बालक पर पत्थर फेंकते तो वे गोबर के ढेले बन जाते और जब वह बालक ग्वालों पर गोबर के ढेले फेंकता तो वे पत्थरों में परिवर्तित हो जाते। ग्वालों ने जब इस चमत्कार की चर्चा गाँवों में की तो स्थानीय लोग जाओं के शरटू व भरटू ब्राह्मणों के पास गए। शरटू ने कहा कि वह कोई खेटू यानी दानव है, लेकिन भरटू ब्राह्मण ने कहा कि कोई दिआंशी यानी देवता का अंश है। तब लोगों ने वर्तमान ढलैर गाँव के पीछे मलागड़ी खड्ड के जंगल में काठ-कुणी शैली में मंदिर का निर्माण कर उसके गर्भगृह में नाग देवता की प्रस्तर प्रतिमा स्थापित की। मान्यता है कि इससे पहले यह देवता रई के वृक्ष में निवास

करता था, जिस कारण इसका नाम 'रियासी' पड़ा। इसके पश्चात् इस देवता की स्थापना झलैर गाँव में भी की गई।

लक्ष्मीनारायण

गाँव व तहसील : निरमंड।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : निरमंड का टकोल मुहल्ला।

स्थापत्य : निरमंड के पूर्वी किनारे पर स्थित एक मंज़िल का प्रस्तर व लकड़ी से बना यह मंदिर काठकुणी शैली का है। स्लेटों से ढकी इसकी ढलानदार छत पर कुरड़ है। मंदिर के गर्भगृह तथा बाह्य द्वार पर देवी-देवताओं की सुंदर आकृतियाँ उकेरी गई हैं। मंदिर परिसर का द्वार तराशे पत्थरों से निर्मित है। लक्ष्मीनारायण मंदिर का पुराना नाम 'ठाकुरद्वार' प्रचलित है।

अधिकार क्षेत्र : निरमंड गाँव का भिउंटा खुंडा।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में समिति।

न्याय प्रणाली : लड्डू डालकर, कील ठोक कर या गूर को छराकर।

पूजा : वैष्णव ब्राह्मण, जिन्हें 'बड़े भाट' भी कहते हैं, बारी-बारी से पूजा करते हैं। प्रातः कालीन पूजा के लिए 'चंडी बावली' से जल लाया जाता है तथा प्रतिमा को स्नान करा कर धूप-दीप, पुष्प-अक्षत, कुंकुम चढ़ाकर घंटा व शंख ध्वनि के साथ पूजा की जाती है।

रथ व मोहरे : नहीं हैं।

मेले-त्योहार : कृष्ण जन्माष्टमी वाले दिन मंदिर से राधा-कृष्ण की शोभा यात्रा निकलती है। फाल्गुन मास में 'ठाकुरे फाग' का आयोजन होता है जिसमें होली मेला इस मंदिर से आरम्भ होकर यहीं समाप्त होता है।

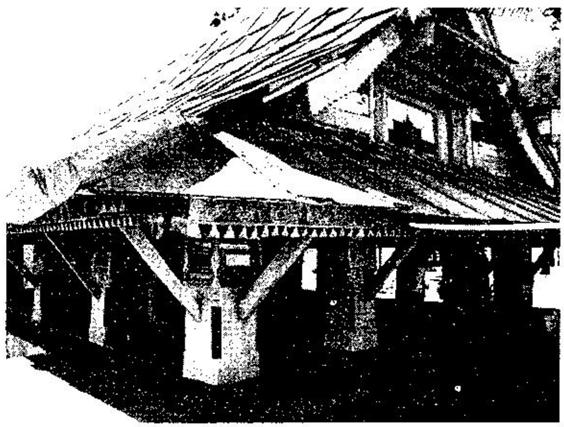
जनश्रुति : प्रारंभिक भूंडा महायज्ञ के आयोजन में भाग लेने के लिए जब वैष्णव सम्प्रदाय के लोग परशुरामजी के साथ निरमंड आए तो उन्होंने यहाँ टकोल मुहल्ले में अपने इष्ट लक्ष्मीनारायण की स्थापना की, जिनका मूल स्थान अयोध्या है।

लटासण देवी

गाँव : दुराह, तहसील : निरमंड।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : दुराह।

स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर निर्मित काठकुणी शैली में बना एक मंज़िल का यह मंदिर लगभग 300 वर्ष पुराना है। इसके गर्भगृह-द्वार पर काष्ठकला है। गर्भगृह के बाहर लकड़ी के स्तंभों पर छत निर्मित है, उसके नीचे खुले कक्ष



में हवन कुंड है। मंदिर का मुख्य द्वार तराशे पत्थरों का बना है। मंदिर के चारों ओर किलानुमा घेराबंदी की गई है। परिसर में प्रस्तर-चक्के बिछे हुए हैं।

अधिकार क्षेत्र : गाँव गौरा, गवाड़, शाह, शांई, शेगनी, शमोह, जगेढ़, बखुन, जलोड़ी, पठौर, सम्पूर्ण लोट और दुराह पंचायत।

प्रबंध : कारदारी अध्यक्षता में समिति।

न्याय प्रणाली : गाँव के विशिष्ट व्यक्तियों के माध्यम से।

पूजा : दुराह बावड़ी से स्नान हेतु जल लाकर दोनों समय धूप-दीप व घंटा ध्वनि सहित।

रथ : चौरस आधार, शिखर की ओर तिरछा।

मोहरे : पंद्रह। एक मोहरा लटासण देवी का, एक तांदी नाग, तीन च ूई माई व दस जोगणियाँ।

मेले-त्योहार : चैत्र शुक्ल के प्रथम नवरात्र को पत्री बखाण, शुक्ल अष्टमी को रात्रि जागरण, 19 ज्येष्ठ को शाह गाँव में रात्रि जागरण, 20 ज्येष्ठ को ध्वांश गाँव में

जेठ की जाच, श्रावण मास की संक्रांति से 4 प्रविष्टे तक मंदिर परिसर में चिमटी मेला, 5 से 7 श्रावण तक पजाही मेला, 8 से 17 श्रावण तक देवी की अपनी 'हार' में यात्रा, माघ संक्रांति को 'घृतमा' पर्व तथा फाल्गुन संक्रांति को गड़ाई पर्व।

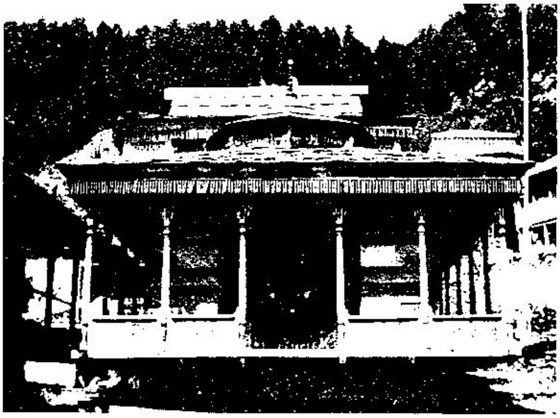
जनश्रुति : बाड़ा कुई नामक स्थान से उत्पन्न सात भराड़ी-देवियों में से सबसे बड़ी लटासण देवी मानी जाती है। माँ अंबिका के निर्देशानुसार यह अपना स्थान ढूँढने निकली और निरमंड से सात किलोमीटर दूर चूनागही के समीप सीऊधारला से होकर मैगबील नामक स्थान पर पहुँची। इससे आगे अपना स्थान बताते हुए माता ने यहाँ अपनी डाउड़ी (लोह चिह्न) गाड़ दी। वहाँ से आगे चल कर कुछ दूरी पर खैर गाँव के साथ क्यार (धान खेत) में पहुँची। क्यार से वह ध्वांश होते हुए दुराह के समीप 'च ूई माई स्थान पर पहुँची। वहाँ उसे पहाड़ पर एक विशाल शिला दिखाई दी। माता ने उस शिला पर अपने रथ और मोहरों की आकृति दर्शाई। कालांतर में लोगों द्वारा माता के रथ और मोहरे उसी आकार में बनाए गए। वहाँ से माँ नीचे की ओर खनौण गाँव पहुँची। वहाँ जलाड़ा नाम की बावड़ी थी, जिस पर एक राक्षस का अधिकार था। वह लोगों को पानी नहीं पीने देता था। माँ लटासण ने कन्या का रूप धारण कर उस राक्षस का वध किया। तब एक व्यक्ति ने कन्या को पीठ पर उठाकर दुराह गाँव के समीप कांडू पहुँचाया। माँ को यह स्थान बहुत अच्छा लगा और उसने भेखल की झाड़ी के नीचे अपना स्थान बना लिया। दैवी कृपा से चींटियों ने मांझवी गाँव से लगभग एक 'खार' काउणी (कँगनी नामक अन्न) के दाने लाकर उनसे उस झाड़ी के नीचे देवी के मंदिर की रूपरेखा तैयार की। तब माँ ने गौरा गाँव के बौहरा खानदान के एक व्यक्ति को स्वप्न में आदेश दिया कि वह दुराह में भेखल की झाड़ी के नीचे काउणी के दानों से बनाए गए नक्शे के अनुसार उसके मंदिर का निर्माण करे। बौहरा खानदान के उस व्यक्ति ने लोगों के सहयोग से वहाँ देवी के गर्भगृह और मंदिर का निर्माण करवाया। इसके पश्चात् माँ ने दलाश के समीप तदाशी गाँव के लोगों को स्वप्न में दर्शन दिए। उन्होंने मंदिर के चारों ओर किलानुमा परिसर तैयार किया और देवी के लिए धौंस, भाणा नामक वाद्ययंत्र तथा वजंत्री दिए। देवी का अधिकार क्षेत्र लोट फाटी होने के कारण यह 'लोटासन' कहलाई जिसे बाद में लटासण देवी के नाम से जाना तथा पूजा जाने लगा।

लोहड़ी नाग

गाँव : कतमोर, तहसील : निरमंड।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : कतमोर।

शाखा मंदिर : गाँव शना।



स्थापत्य : एक मंज़िल का यह मंदिर लगभग 150 वर्ष पुराना है। तराशे प्रस्तर व लकड़ी की चिनाई में यह काठकुणी शैली में निर्मित है। इसकी ढलानदार छत स्लेटों से आच्छादित है। मंदिर में सुंदर काष्ठ कलाकृतियाँ उकेरी गई हैं। मंदिर के साथ दो मंज़िल की कोठी विद्यमान है।

अधिकार क्षेत्र : गाँव कतमोर, कंडा, कुल्था, धारागाही, कतमोरी तथा लांज़।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।

पूजा : दोनों समय जड़ी-धूप, बेठर व गुग्गुल धूप से।

रथ : आधार से चौरस, शिखर की ओर तिरछा।

मोहरे : दस। ऊपर का मोहरा संयुक्त रूप में लोहड़ी नाग व शनाई नाग का है तथा नीचे नौ देवियों के मोहरे हैं।

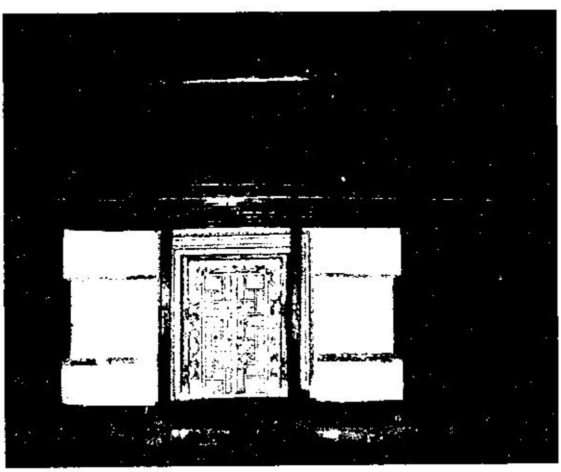
मेले-त्योहर : फाल्गुन संक्रांति को गड़ाई पर्व, वैशाख संक्रांति को पलैई, वैशाख शुक्ल पक्ष में पूज, श्रावण 23 को पूज, मकर संक्रांति को 'घृतमा'।

जनश्रुति : देव भारथा के अनुसार लोहड़ी नाग कुंती का पुत्र माना जाता है। यह बारह वर्ष तक माँ की गोद में खेलने के बाद विष्णुधार से नोर, ठारूधार, खड़ैउगर गौही, कूई गौही, मरूटी सेरी, गडूम, लोहसर, खौणी बाग, सुंगर खोता, कंडा, गाड़े घराट होता हुआ ठौड़ नामक स्थान के साथ कतमोर पहुँचा। इसने चलते हुए रास्ते में विष्णुधार में शलाट के निरंकुश राणा विष्णु का वध किया तथा इस राणा के साठ जोड़ी बैल, जो रोपड़ में राणे के क्यार में हल जोत रहे थे तथा धान रोप रहीं साठ महिलाओं को वहीं डूबो दिया। नोर के दुष्ट व अत्याचारी राणा और उसके महल को भी नष्ट किया। फिर कंडा के दुष्ट राणा का नाश किया। इस तरह के चमत्कारों को देखते हुए लोगों ने कतमोर में इस नाग का मंदिर बनाया और इसकी पूजा की जाने लगी।

विष्णु देऊ

गाँव : पुजारली, तहसील : निरमंड।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : पुजारली।



स्थापत्य : ढलानदार छत वाला एक कक्ष का साधारण मंदिर जिसके निर्माण में सीमेंट का प्रयोग हुआ है और काष्ठद्वार सुन्दर नक्काशी युक्त है।

अधिकार क्षेत्र : गाँव पुजारली, ओलीनाल, कांडू, थूआ।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।

पूजा : प्रातः-सायं धूप-दीप से।

रथ : नहीं है। गर्भगृह में केवल पिंडी है।

मेले-त्योहार : ज़ागरो, दौश, जड़ोहगी तथा परैशी राच।

जनश्रुति : देव भारथा के अनुसार सृष्टि के चारों ओर अंधकार ही अंधकार था। चारों दिशाओं से तूफान आया और भारी वर्षा हुई। जल और वायु ने मिलकर एक बहुत बड़ा तालाब बनाया। अचानक चक्रवात के आने से तालाब में एक विशाल लिंग पैदा हुआ और भयंकर ध्वनि के कारण वह फट गया, जिससे तीन अंडों की उत्पत्ति हुई। उनसे ब्रह्मा, विष्णु, महेश पैदा हुए। विष्णु चिंता में पड़ गए कि पृथ्वी को प्रकाशमय कैसे किया जाए। इस सोच में उनका हाथ माथे पर गया। उसने माथे से मैल की दो बटियाँ निकालीं जिसे उन्होंने पूर्व की ओर फेंक दिया। उनसे सूरज और चंद्रमा की उत्पत्ति हुई। दोनों विष्णु जी से राज माँगने लगे। तब विष्णु जी ने सूरज को दिन का और चंद्रमा को रात का राज दे दिया। इस तरह अंधकार-युक्त पृथ्वी द्युतिमान हो गई। सृष्टि का पालक होने के कारण विष्णुजी के प्रति जन-जन की अगाध श्रद्धा है। इसी आस्था से पुजारली में लोगों ने इनके लिए मंदिर का निर्माण कर पूजा आरंभ कर दी।

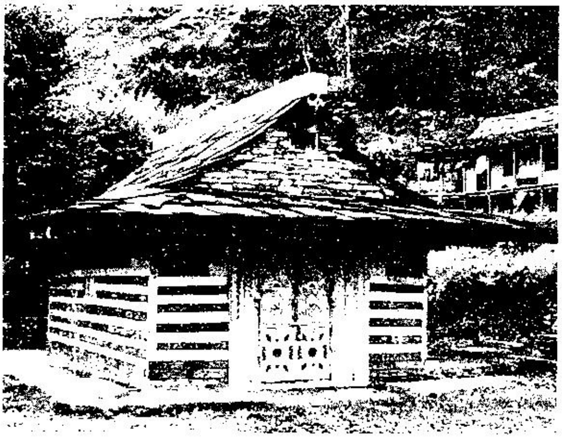
शक्त ऋषि

गाँव : थंथल, तहसील : निरमंड।

मूल स्थान एवं मंदिर : थंथल।

भंडार : गाँव कुशैणी।

स्थापत्य : एक मंज़िल का यह मंदिर लगभग 100 वर्ष पुराना है। काष्ठ व प्रस्तर से निर्मित इस मंदिर की दीवारें अंदर-बाहर से गारे से लीपी गई हैं। इसकी ढलानदार छत



स्लेटों से ढकी है, जिसकी शिखा पर कुरड़ तथा त्रिशूल हैं। मंदिर के गर्भगृह के बाहर एक कमरा है। इन दोनों कक्षों में काष्ठद्वार हैं।

अधिकार क्षेत्र : गाँव थंथल, तिरमीधार, बांगू, डुंगरू ज़ान, कुशैणी तथा ढाढसा।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में समिति।

न्याय प्रणाली : माँ अंबिका की अध्यक्षता में गूर के माध्यम से।

पूजा : शाम के समय शंख और घंटी की ध्वनि के साथ; धुड़छ में स्थानीय जड़ी-बूटी व बेठर जलाकर की जाती है।

रथ : चौरस आधार और ऊपर की ओर तिरछा व ढलानदार है। शिखर पर चाँदी का छत्र, पीछे आरशी, सिर पर चुरू के बाल।

मोहरे : मुख्य मोहरा देवता शक्त ऋषि का है, साथ में काली, लाटौ देऊ, भडराई नाग व दराडू देऊ के मोहरों के अलावा छह अन्य मोहरे।

मेले-त्योहार : चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को नववर्ष पंचांग का व्याख्यान, 2 प्रविष्टे वैशाख को भडराह गाँव में पूज, 19 वैशाख को थंथल में निरशू, मकर संक्रांति को 'घृतमा'।

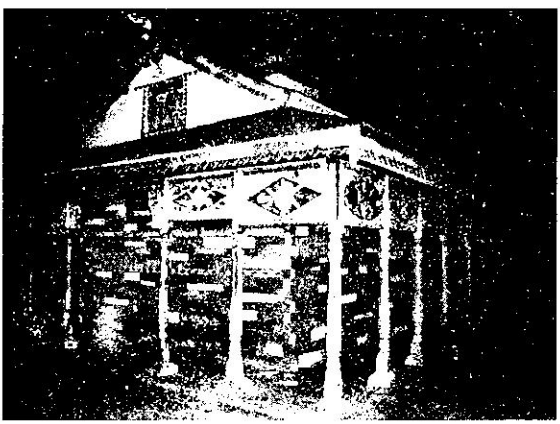
जनश्रुति : किंवदंती के अनुसार द्वापर युग के अंत में श्याना ऋषि, ध्याना ऋषि और शक्त ऋषि कैलास पर्वत पर तपस्या करते थे। लम्बी तपस्या के बाद श्याना और ध्याना ऋषियों ने शक्त ऋषि को झोली और लाठी पकड़ाकर भ्रमण के लिए भेजा। शक्त ऋषि कैलास पर्वत से झोली और लाठी लेकर शाखरा थाच, लौशड़ा थाच होते हुए नोखू पाणी नामक स्थान में पहुँचा। किंवदंती है कि यहाँ ऋषि ने धरती में गज़ मारकर पानी निकाला था। इसलिए इस स्थान को 'नोखू पाणी' कहा गया। यहाँ से चलकर ऋषि ने घमैणी के समीप एंदरी वील स्थान पर कुछ दिन तपस्या की, फिर मूहल की ओर चल पड़ा। मूहल में इसकी भेंट सावणियों (जोगनियों) तथा राई नाग से हुई। राई नाग ने इसे कई प्रकार की शक्तियाँ दीं। ऋषि ने नाग को अपना गुरु मानकर इनसे आगे जाने की अनुमति ली और बीहड़ जंगल से होते हुए चूआ कंडा पहुँचा और कुछ दिन वहाँ ठहरा। फिर वह कतमोरी गाँव के समीप नाग सौर (नाग-सरोवर) पहुँचा। उसने नाग से अपने लिए कुछ स्थान माँगा। लेकिन नाग ने उसे अपने क्षेत्र में स्थान देने से इनकार कर दिया। ऋषि ने तब अपने तपोबल से नाग का सरोवर सुखा दिया और कतमोर गाँव चला गया। वहाँ उसने एक बुढ़िया से पानी माँगा। बुढ़िया ने उसे डैंठला कहकर पानी देने से मना किया। ऋषि ने तब बुढ़िया की बावड़ी से एक कमंडल पानी भरा और बाकी पानी अपने बल से सुखा दिया। फिर वह आगे चलते हुए वर्तमान कुलथा गाँव में पहुँचकर लोगों से भिक्षा माँगने लगा। लोकविश्वास है कि लोगों ने उसे भिक्षा के रूप में कुलथ की मोड़ी (भूने हुए कुलथ) दी। ऋषि ने प्रसन्न होकर कुलथ की भरपूर उपज का वरदान दिया। आज भी यहाँ कुलथ की भरपूर फसल होती है। इसी से इस स्थान का नाम कुलथा पड़ा। वहाँ से वह खलैर, बनू की धार होते हुए थंथल गाँव के पीछे बाए नाड़ नामक स्थान पर पहुँचा। लोक मान्यता के अनुसार ऋषि ने वहाँ अपने कमंडल में कतमोर से लाया पानी उंडेल दिया, जिससे यहाँ निरंतर बहने वाली एक जलधारा फूटी। अब ऋषि मक्खी का रूप धारण करके थंथल की ओर निकला। रास्ते में जिस स्थान पर वह रुका उसका नाम मक्खुए धारटी पड़ा। थंथल में उसकी भेंट स्थानीय देवता 'लाटा' से हुई। लाटा यानी लंगड़ा होने के कारण यह चल नहीं सकता था,

इसलिए ऋषि ने इस देवता से अनुरोध किया कि वह बैठा राज स्वयं करे और चलता राज उसे दे दे। तब देवता ने शर्त रखी कि उसकी भी इस स्थान में मान्यता होनी चाहिए। शर्त मानते हुए ऋषि ने एक पेड़ के नीचे न केवल 'लाटा देवता' की स्थापना की बल्कि अपने रथ में इसके मोहरे को भी स्थान दिया।

थंथल में अपना स्थान सुनिश्चित करने के पश्चात् ऋषि निरमंड में माता अंबिका के पास गया और उनसे पाची (आशीर्वाद) प्राप्त करके वहाँ से अपने लिए ढाढू बजंत्री को मांग कर उसे थंथल ले आया। इसकी शक्ति के चमत्कार से प्रभावित होकर लोगों ने थंथल में ऋषि का मंदिर बना दिया।

सरमासणी देवी

गाँव : पुजारली, तहसील : निरमंड।
मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : पुजारली।
शाखा मंदिर : सुनैर।



स्थापत्य : काठकुणी शैली में निर्मित एक मंज़िल का मंदिर, जिसकी छत स्लेटों से ढकी है। गर्भगृह के बाहर एक कक्ष है। मैदान के छोर पर स्थित इस मंदिर के परिसर का मुख्य द्वार प्रस्तर निर्मित है। हाल ही में मंदिर का जीर्णोद्धार किया गया है, जिसमें पुरानी शैली बनाए रखी गई है।

अधिकार क्षेत्र : गाँव निशानी, मातला, रलू, कथांडा, त्वार, रैमू, केदस, कांडू, बागीधार, पोखन, ओलीनाड़, बड़ीधार, डंडीधार, शोहच, ठांस, सुनैर, पुजारली, मरैहड़ी।
प्रबंध : कारदारी अध्यक्षता में समिति।
न्याय प्रणाली : गाँव के विशिष्ट व्यक्तियों के माध्यम से।
पूजा : प्रातः-सायं स्थानीय जड़ी-धूप से।
मेले-त्योहार : मकर संक्रांति के दिन 'घृतमा' पर्व।
जनश्रुति : किसी समय खड़ोगी के एक खश का हलवाहा पुजारली से कुछ दूर खनोट गाँव के साथ लगते एक बड़े खेत में हल चला रहा था। अचानक हल के फाल में फंसकर एक मूर्ति ज़मीन से निकल आई, जिसका निशान आज भी मूर्ति के नाक पर दिखाई देता है। हलवाहे ने मूर्ति उठाकर एक टोकरी में रख दी, लेकिन मूर्ति वहाँ से बाहर निकल आई। हलवाहे ने मूर्ति पुनः टोकरी में रखी, परंतु मूर्ति फिर बाहर निकल आई। खड़ोगी का खश मूर्ति को घर ले आया और उसने उसे रसोईघर में चूल्हे के पास रख दिया। मूर्ति वहाँ भी नहीं टिकी। तब उसने इसे संदूक में रखा, परंतु मूर्ति वहाँ से चली गई और समीप के मातला गाँव के मुआणे के घर जा पहुँची। मुआणे की कन्या ने इसकी पूजा-अर्चना की। मूर्ति पुनः वहाँ से निकलकर केवटीधार, शोहच, ठांस, चौड़ाकोट व डगेज गाँव होते हुए निरमंड में माँ अंबिका के मंदिर में चली गई। कुछ दिन वहाँ आश्रय देने के बाद माँ ने उसे कहा कि वह सुनैर गाँव चली जाए। आदेशानुसार वह सुनैर चली गई। वहाँ वह कभी मूर्ति तो कभी कन्या का रूप धारण करने लगी। यह चमत्कार देखकर लोगों ने उसके लिए एक छोटा-सा मंदिर बना दिया। सात भराड़ी-देवियों में से एक का सुनैर में स्थान होने के कारण मूर्ति की वहाँ ठहरने की इच्छा नहीं हुई। फिर एक घटना हुई। सुनैर में स्थित मंदिर से लेकर पुजारली गाँव के एक छोर तक चींटियों की लगभग तीन सौ गज लम्बी कतार बन गई। चींटियों की कतार के साथ-साथ चलकर मूर्ति पुजारली आ पहुँची। चींटियों ने वहाँ एक घेरा बना लिया। माँ ने तब ओड़ जाति की एक कन्या को स्वप्न में आदेश दिया कि चींटियों द्वारा घेरे हुए

स्थान पर मंदिर की नींव खोदी जाए। कन्या ने जब यह बात लोगों को सुनाई तो वहाँ लकड़ी व पत्थर से काठकुणी शैली में देवी का मंदिर बनाया गया, जिसकी आधारशिला उसी कन्या से रखवाई गई। मंदिर के गर्भगृह में शैलखंड पर उकेरी गई माँ सरमासणी की मूर्ति स्थापित है।

सराजी देऊ

गाँव : शमारनी, तहसील : निरमंड।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : शमारनी।

स्थापत्य : एक मंज़िल व एक कमरे का यह मंदिर लगभग 80 वर्ष पुराना है। यह काष्ठ-प्रस्तर व गारे से निर्मित है, इसकी ढलवाँ छत स्लेटों की है।

अधिकार क्षेत्र : गाँव सनारा, शमारनी, शारवी, लभोड़ा, शाठ की शाह, सेरी डुवार, घाटू, खैर, बूटीधार, बागीधार।

प्रबंध : चयनित समिति द्वारा।

पूजा : प्रतिदिन प्रातः-सायं जड़ी धूप से।

रथ : चिड़ी शैली।

मोहरे : सात।

मेले व त्योहार : 12 आश्विन को गाँव बागीधार में शैरी उत्सव।

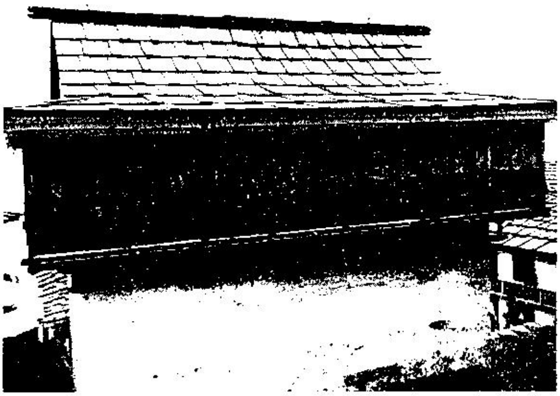
जनश्रुति : देव भारथा के अनुसार देवता ने लाहुल़-बझाहुल़ नामक स्थान में अवतार लिया था। वहाँ के राणा छैदरू ने देवता के साथ युद्ध किया। देवता ने राणा को महल सहित नष्ट किया और पंडोह पहुँचकर वहाँ के देवता के साथ जुआ खेला। पंडोह से बैहना जाकर वह 'धणुकू' नाम से प्रसिद्ध हुआ। वहाँ से आगे बाड़ी दुर्गा होकर आनी पहुँचा और अपना नाम 'सराज़पाणु' बताया। उसने वहाँ के सारे अहंकारी राणाओं का संहार किया। फिर शमशर गया। शमशर से नीचे सुहउटी नामक स्थान के ब्राह्मण जूते पहनकर मंदिर में पूजा किया करते थे। देऊ सराजी ने उनका भी नाश कर दिया और शमशर महादेव से अपने लिए स्थान प्राप्त किया। आगे जाकर खादवी के समीप वह काली ज़ान पहुँचा। वहाँ के लोग देवता का उपहास करने लगे। देवता ने दंड स्वरूप जब उन्हें बीमार कर दिया तो वे खादवी के ब्राह्मण के पास इसका कारण जानने गए। उसने बताया कि देव-दोष है। तब लोगों ने वहाँ देवता की कोठी बनाई और अपने अन्न का कुछ हिस्सा देवता के भोग के लिए देने लगे।

देवता ने कोहिला में तरमोहड़ कोल़ी नामक स्थान में अपने लिए एक वृक्ष पर जगह ली। वहाँ से मरूटी सेरी होते हुए डोहवी पहुँचा, जहाँ उसने अपना स्थान बनाया। फिर नौनू कंडा गया। वहाँ से उसे शरशाह गाँव में चजाई नाग नृत्य करता हुआ दिखाई दिया। उसने नाग के पास जाकर उस के साथ रहने की इच्छा व्यक्त की। नाग ने इसे मानकर उसे चलता राज दिया। वहाँ वह वज़ीर बन कर रहने लगा। फिर शारवी से नीचे उतरकर जल के साथ एक पेड़ में स्थान लिया और रातों-रात शमारनी पहुँचकर वहाँ अपनी स्थाई जगह बनाई।

आनी खंड

काली नाग

गाँव : लढागी, तहसील : आनी।
मूल स्थान : लढागी में महरुटी सेर।
मंदिर एवं भंडार : लढागी।



शाखा मंदिर : बुच्छैर व महरुटी सेर।
स्थापत्य : पत्थर व लकड़ी से बने दो मंज़िल के इस मंदिर की छत स्लेटों से ढकी है। मंदिर का द्वार पूर्व की ओर है। साथ लगता एक खौल़ (खलियान) है, जिसमें पत्थर के चक्के बिछे हैं। मंदिर के पीछे की ओर 'सौह' (मैदान) है, जहाँ देवता का मेला लगता है।
अधिकार क्षेत्र : गाँव लढागी, बुच्छैर, लफाली, रुमाली, शिला आरन तथा रखाईधार।
प्रबंध : प्रधान की अध्यक्षता में समिति।
न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से या लड्डू डालकर।
पूजा : प्रातः आठ बजे, सायं साढ़े सात बजे।
रथ : चिड़ी शैली।
मोहरे : स्वर्ण व रजत निर्मित कुल पंद्रह, जिनमें से एक मुख्य मोहरा है।

मेले-त्योहार : वैशाख के 24 प्रविष्टे को क्वाईथाच मेला, फाल्गुन मास में फागुली मेला, हर तीसरे वर्ष ज्येष्ठ संक्रांति को त्योहार मनाया जाता है।
जनश्रुति : यह देवता रामपुर के बसाहर शुआ कौऊंरु नामक स्थान से कशोली गाड़, चुनागाही होकर शाऊंई बाई तक आया और वहाँ स्नान व विश्राम करके आगे शलाट पहुँचा। वहाँ मार्कंडेय ऋषि से बातचीत करने के बाद बूढ़ा सराहन पहुँच कर दो नाग देवताओं जलांडी तथा सराहनी से अपने लिए स्थान माँगा, लेकिन दोनों देवताओं ने उसे स्थान देने से इनकार कर दिया। तब उसने छलैड होकर खुनण गौलू में आकर शृंगा ऋषि के साथ सीमा बाँधी। आगे जाकर मतरेड़ा में उसने फागुली नामक स्थान ले लिया और एक ठकुराइन को चमत्कार दिखा कर खुन्न होते हुए गडूम पहुँचा। वहाँ अपने भाई गडूमी देवता से मिलते हुए शमशर पहुँचा और देवता शमशरी से अपने लिए स्थान माँगा। शमशरी ने कहा कि यदि वह उसका सेवक बनकर रहेगा तो उसे स्थान मिलेगा। तब काली नाग ने कहा कि वह ऐसी जगह जाएगा जहाँ उसकी खूब मान्यता हो। यह कहकर वह शगाण, नारायण गढ़, कतमोर, चरांडा जोत, तराला, बाड़ी देऊरा, बनास, शरोगी (क्वाईथाच), कटास देऊरा और सरीहण गया। सरीहण में सरीहणी देवता ने कहा कि यदि वह वहाँ 'माण-मरेछों' का नाश करेगा तो उसे स्थान देगा। नाग देवता ने माण-मरेछों का समूल नाश किया और उसके बाद गाँव लढागी और बुच्छैर के मध्य स्थित महरुटी सेरी में उसने अपना स्थान बना लिया और लोगों को अनेक चमत्कार दिखा कर अपना अधिकार क्षेत्र बढ़ाया।

काली माता

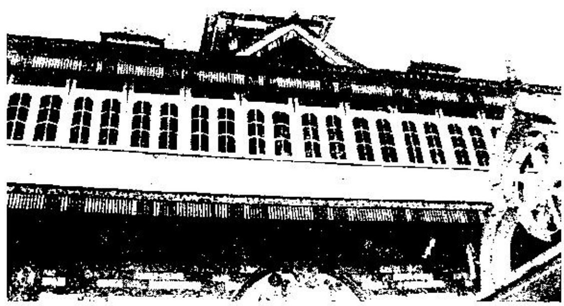
गाँव : परकौट, तहसील : आनी।
मूल स्थान एवं मंदिर : परकौट।
भंडार : गाँव डगसारी।
स्थापत्य : गाँव के मध्य में ईंट, लकड़ी व सीमेंट से बना दो मंज़िल का मंदिर लगभग 15 वर्ष पुराना है, जिसकी ढलवाँ छत स्लेटों की है। छत के शिखर पर कुरड़ लगा है, जिस पर एक कलश है। काष्ठ का मुख्य द्वार कलाकृतिपूर्ण



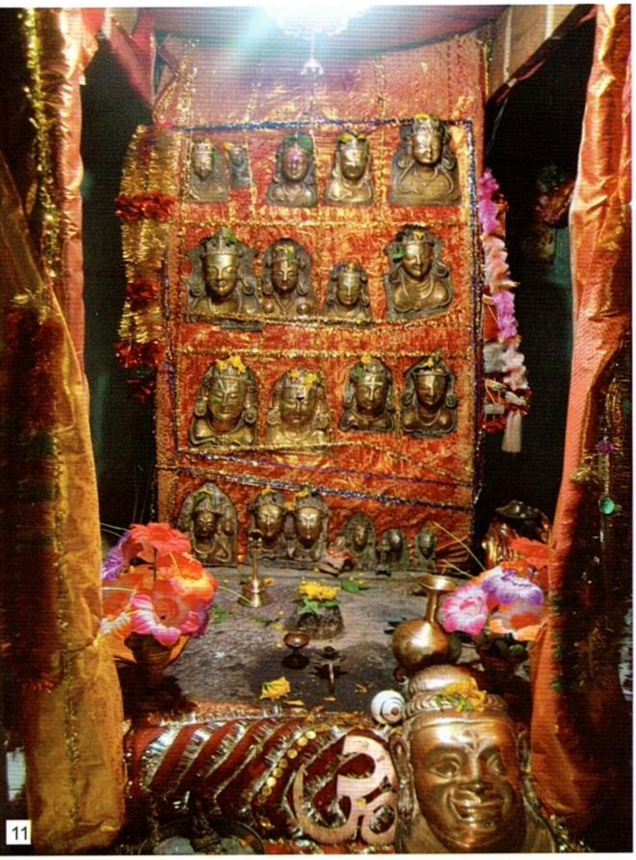
है। मंदिर से कुछ दूरी पर खौड़ (खलियान) है, जिसमें चक्के बिछे हैं। मेले आदि के अवसर पर देवी जनता को दर्शन देने के लिए खौड़ में विराजती है।
अधिकार क्षेत्र : ग्राम पंचायत कमांद के सत्रह गाँव।
प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में देवता के कारिंदों द्वारा।
न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।
पूजा : प्रातः-सायं धूप-दीप से।
रथ : जुगा शैली।
मोहरे : चार।
मेले-त्योहर : श्रावण में कोफरीधार मेला शौणचा, कमांद में दीपावली।
जनश्रुति : कुल्लू का राजा मानसिंह एक बार सरेउलसर से लौटते हुए जब जूणीबाग नामक स्थान पर पहुँचा तो महाकाली ने उसके सामने प्रकट होकर अपने लिए स्थान माँगा। राजा ने परकौट गाँव में दो शिलाओं के मध्य मंदिर के लिए स्थान देकर वहाँ देवी की स्थापना की। माँ काली की कृपा से जब लोगों के कार्य-सिद्ध होने लगे तो उसकी प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैली। लोक विश्वास है कि आज भी देवी अपने मंदिर में आनेवाले प्रत्येक श्रद्धालु की मनोकामना पूर्ण करती है।

कुंगशी महादेव

गाँव : कुंगश, तहसील : आनी।
मूल स्थान : कुंगश पंचायत का मध्य भाग।
मंदिर : कुंगश।
भंडार : गाँव खमारला और बागी।
स्थापत्य : काष्ठ प्रस्तर निर्मित, देशज शैली का मंदिर।
अधिकार क्षेत्र : जमदा खड्ड से शोधा, वाय, बागी, चौंराधार, मलोरीबाग, पोएग, तेशन।
प्रबंध : स्थानिक समिति।
न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से तथा गोबर के लड्डू डालने की विधि से।



पूजा : प्रतिदिन प्रातः-सायं पंचोपचार पूर्वक।
रथ : खड़ी शैली।
मोहरे : बारह।
मेले-त्योहार : मलोरी बाग जातरा, बीस आषाढ़ को मेला, भादों मास में देव 'त्वार', नवरात्र, दीपावली।
जनश्रुति : वर्तमान मंदिर परिसर के साथ प्राचीन समय में


11


12

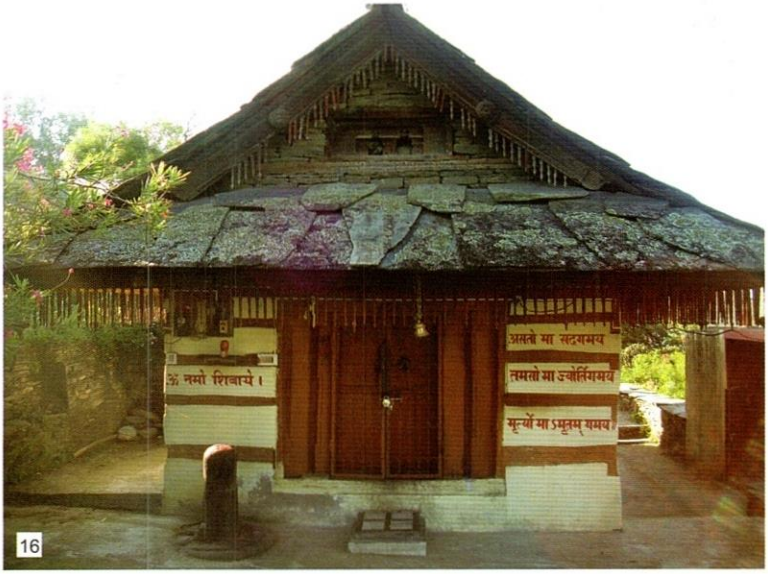

13



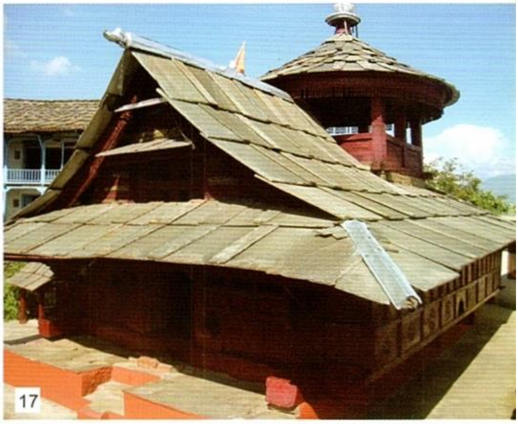
14



15



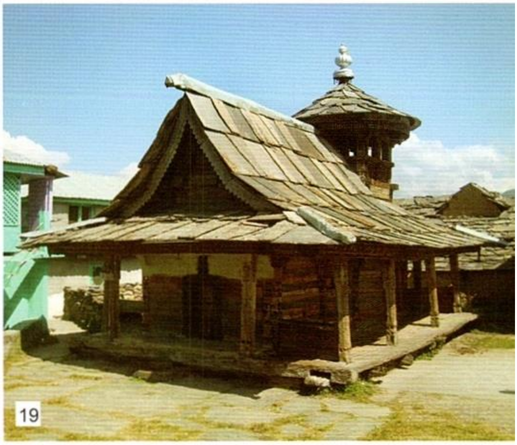
16



17



18



19


ULTRA MIRROR 3MM



देवदर्शन : फाटो फीचर : 2

11. बेहनी महादेव, आनी की प्रतिमा-सज्जा; 12. चंडीदेवी मन्दिर, निरमंड के परिसर में लघु शिव मंदिर; 13. बेहनी महादेव मंदिर, बेहना, आनी; 14. चम्भू मंदिर, द्रोपा, निरमंड; 15. मारकंडा ऋषि, शलाट, निरमंड का रथ; 16. बना देऊ, निरमंड का प्राचीन मंदिर; 17. बूढ़ा महादेव मंदिर, निथर, निरमंड; 18. नातली नाग मंदिर, कंडी, निरमंड; 19. धनेश्वरी मंदिर, धनाह, निरमंड; 20. दशनामी अखाड़ा, निरमंड में दत्तात्रेय स्वामी की प्रतिमा; 21. चलासनी माता, जाओं, निरमंड का रथ

कुंगशी (बिच्छू बूटी) हुआ करती थी। वह भूमि किसी किसान की थी। एक बार बीजाई करने के उद्देश्य से उसने भूमि पर उगी कुंगशियों को काटना आरम्भ किया तो कुंगशी की एक झाड़ी के नीचे उसे बड़ा-सा पत्थर दिखाई दिया। जब उसने वह स्थान खोदा तो एक बहुत बड़ा शिवलिंग प्राप्त हुआ। इस बात का पता लगने पर लोग उसे देखने के लिए एकत्र हो गए और आपसी विचार-विमर्श के बाद उन्होंने उसे वहीं स्थापित कर दिया। कुंगश से उत्पन्न होने के कारण देवता का नाम कुंगशी महादेव व गाँव का नाम कुंगश पड़ा।

कुईकंडा नाग

गाँव : तांदी, तहसील : आनी।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : तांदी।

शाखा मंदिर : गाँव व्यूंगल, घाटवा व शेऊगी।

स्थापत्य : सीमेंट का बना नवीन मंदिर जो पुराने मंदिर के स्थान पर निर्मित है।

अधिकार क्षेत्र : आनी व निरमंड क्षेत्र की बारह पंचायतें।

प्रबंध : प्रधान की अध्यक्षता में समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से तथा विशेष परिस्थितियों में समिति तथा कारदार द्वारा।

पूजा : लोक विधि से गुग्गुल धूप जलाकर, घंटा व शंख ध्वनि के साथ।



रथ : जुगा शैली।

मोहरे : कुल पंद्रह, मुख्य एक, अन्य चौदह।

मेले-त्योहार : फेरा मेला जुलाई मास से आरंभ होता है। इसमें देवता अपने अधिकार क्षेत्र के प्रत्येक गाँव में जाता है और हर स्थान पर मेला लगता है। महिलाएँ देवता की पूजा-अर्चना करने के बाद नृत्य करती हैं। भाद्रपद मास के 21 प्रविष्टे को पलेहीधार मेला मनाया जाता है, जिसमें कुईकंडा नाग व देवी शाणी दुर्गा अपने-अपने रथों में सुसज्जित होकर मेले में आते हैं, जहाँ देव-नृत्य होता है। रोवा मेला भी आयोजित होता है।

जनश्रुति : प्राचीन समय में तांदी गाँव के किसी बुज ुर्ग को कुई नामक कांटेदार झाड़ी के बीच एक दिव्य मोहरा मिला। उसने उसे घर लाकर पूजना आरम्भ किया। कुछ समय बाद उसने ग्रामीणों की सहायता से गाँव में मंदिर का निर्माण करवाकर उस दिव्य प्रतिमा को मंदिर में स्थापित किया। कुई के कांटों में मिले इस देवता का नाम कुईकंडा पड़ गया।

कुईकंडा नाग

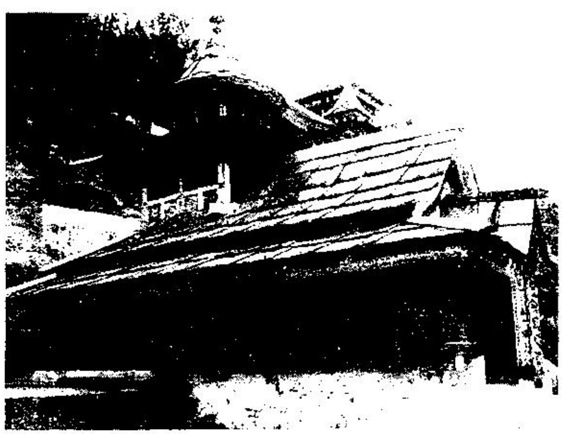
गाँव : शगोगी, तहसील : आनी।

मूल स्थान : गाँव कुईकंडा।

मंदिर एवं भंडार : शगोगी।

शाखा मंदिर : गाँव मढेल, कोटाधार, सिरिगढ़, आनी।

स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर निर्मित पहाड़ी शैली का एक



मंज़िल का मंदिर, जिसकी ढलानदार छत स्लेटों से आच्छादित है। ऊपर कुरड़ लगा है जिस पर तीन मेरु बने हैं।

अधिकार क्षेत्र : ब्यूंगल पंचायत, सोईधार, डिंगीधार, फ्रानाली, बैहना, तलूणा, आनी, नम्होग, जाबण व बखनाओ आदि पंचायतें।

प्रबंध : प्रधान की अध्यक्षता में समिति।

न्याय प्रणाली : देवता द्वारा गूर के माध्यम से।

पूजा : प्रातः-सायं जड़ी-धूप व दीप से।

रथ : तांदी गाँव में रहता है।

मोहरे : तेईस।

मेले-त्योहार : कोटाधार जागरा, दलाश मेला, बश्ता मेला, आनी मेला, मार्गशीर्ष में शगोगी में बूढ़ी दीवाली।

जनश्रुति : शगोगी गाँव के किसी व्यक्ति को कंडा नामक स्थान में अपनी दोघरी (मूल गाँव से दूर ऊँचाई पर स्थित खेत, जहाँ गर्मियों के लिए अस्थाई निवास होता है) में काम करते हुए भूमि से पीतल की तीन प्रतिमाएँ मिलीं। पंडित से पता करने पर मालूम हुआ कि ये नाग देवता की प्रतिमाएँ हैं। तब उस व्यक्ति ने प्रतिमाओं को मूल गाँव शगोगी में लाकर उन्हें अपने घर में पूजना आरम्भ किया। धीरे-धीरे देवता के चमत्कार से प्रभावित होकर गाँव वालों ने देवता के मंदिर का निर्माण कर प्रतिमाओं को वहाँ स्थापित कर दिया। उन तीन प्रतिमाओं में से एक का मोहरा देवता के रथ में सजाया जाता है और शेष दो को किसी को दिखाया नहीं जाता। वे कपड़े से ढकी रहती हैं। मान्यता है कि उनके दर्शन से व्यक्ति बीमार पड़ जाता है।

कुलक्षेत्र महादेव

गाँव : ओलवा, तहसील : आनी।

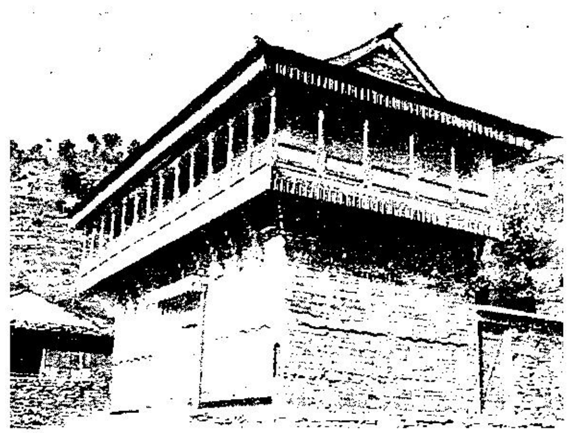
मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : ओलवा।

शाखा मंदिर : गाँव कोटनू, मातल, नगान।

स्थापत्य : स्लेट की छत वाला पहाड़ी शैली में निर्मित मंदिर।

अधिकार क्षेत्र : ग्राम पंचायत तलूणा व आनी के 20 गाँव।

प्रबंध : प्रधान की अध्यक्षता में समिति।



न्याय प्रणाली : देवता के गूर के माध्यम से।

पूजा : प्रातः-सायं धूप, दीप, घंटा व शंख ध्वनि के साथ।

रथ : नहीं है।

मोहरे : बीस।

मेले-त्योहार : वैशाख मास के 8 प्रविष्टे को ठिरशू मेला मनाया जाता है, जिसमें लोगों के मनोरंजन के लिए स्वांगी विभिन्न मुखौटे पहनकर नृत्य करते हैं। महिलाएँ विरशू गीत गाती हैं। ठिरशू का शुभारम्भ पलैई (चीड़ वृक्ष) को मंदिर स्थल में गाड़कर किया जाता है। शिखर पर झंडी लगाई जाती है। बच्चे 'शाली' (बिरोज़ायुक्त लकड़ी) निकालने की प्रतिस्पर्धा में इसके गिर्द दौड़ते हैं और जो शाली निकालता है उसे देवता के आशीर्वाद स्वरूप देव-पुष्प दिया जाता है। भादों मास में कृष्ण जन्माष्टमी के दिन कुलक्षेत्र महादेव के स्थान पर भंडार से भगवान परशुराम का रथ मंदिर प्रांगण में निकाला जाता है। दीपावली के एक मास बाद मार्गशीर्ष अमावस्या को बूढ़ी दीवाली का आयोजन किया जाता है, जिसमें रात को मंदिर के प्रांगण में 'भडराणा' (अलाव) जलाकर उसके गिर्द गायक 'हणु' गाते हैं। रावण का पुतला जलाया जाता है। मध्य रात्रि को फाटी तलूणा, फरानाली व दशोग के लोगों के मध्य ठामरू युद्ध होता है। उस समय देवता भी भडराणे के गिर्द नाचता है। प्रातः बांड युद्ध होता है।

जनश्रुति : मान्यता है कि परशुराम ने जब निरमंड में भूंडा

महायज्ञ किया तो इन्होंने भारत के विभिन्न भागों से ब्राह्मणों को आमंत्रित किया था। उस समय गौड़ नामक ब्राह्मण दक्षिण भारत से यज्ञ में शामिल होने के लिए यहाँ आए थे। परशुराम ने तब ब्राह्मणों को जीवन निर्वाह के लिए इस क्षेत्र में भूमिदान कर उनसे यहीं रहने का आग्रह किया। उनमें से गौड़ ब्राह्मण आनी के ओलवा गाँव में बस गए। उन्होंने यहाँ मंदिर का निर्माण कर अपने कुल देवता की स्थापना की, जिसका नाम बाद में कुलक्षेत्र महादेव पड़ गया। कालांतर में महादेव के साथ परशुराम की मूर्ति भी स्थापित की गई।

कुसुंबा माता

गाँव : खेगसू, तहसील : आनी।
मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : खेगसू।
शाखा मंदिर : गाँव पांजवी, डडोहल।
स्थापत्य : मंदिर का भीतरी भाग काठकुणी शैली में बना



है, जबकि बाहरी भाग पर आधुनिकता की परत चढ़ाई गई है। छत पर स्लेट लगे हैं। यह मंदिर चारदीवारी से घिरा हुआ है।
अधिकार क्षेत्र : गाँव व्युंगल, सोईधार, डिंगीधार, वैहना, फरानाली, कोटगढ़, कुमारसेन।
प्रबंध : प्रधान की अध्यक्षता में समिति।
न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।
पूजा : सतलुज नदी से जल लाकर उससे स्नान करवाकर धूप और घंटा ध्वनि के साथ पूजा की जाती है। अन्त में शंखनाद किया जाता है। विशेष आयोजनों पर वाद्ययंत्र भी बजाए जाते हैं।
रथ : नहीं है।
मोहरे : अष्टभुज मूर्ति।
मेले-त्योहार : वैशाख मास के 6 प्रविष्टे को बिरशू मेला, लूहरी का लवी मेला कार्तिक मास के 21 व 22 प्रविष्टे को मनाया जाता है, मार्गशीर्ष की अमावस्या को बूढ़ी दीवाली।
जनश्रुति : खेगसू माता वाड़ा कुई से उत्पन्न सात भराड़ियों में से एक है, जो अपना स्थान चुनने के लिए चड़ाकोट से सतलुज की ओर उड़कर कुमारसेन के पास कचेड़ी नामक जंगल में आ पहुँची। वहाँ से कन्या का रूप बनाकर वह सतलुज पार के क्षेत्र में घूमते हुए जब डडोहल गाँव पहुँची तो एक व्यक्ति ने उसका परिचय जानना चाहा। वह कुछ कहे बिना चुपचाप खड़ी रही। इसी बीच वहाँ पांजवी और खेगसू गाँवों के लोग आए। उन्होंने भी उस अनजान कन्या से उसके बारे में जानना चाहा, मगर वह तब भी चुप रही। लोगों ने उसे लाटी-जाहरी (गूंगी-बहरी) समझा। तब उस कन्या ने वहाँ एक व्यक्ति की ओर अपना दिव्य प्रकाश फेंका, जिससे उसे खेल आई और उसके माध्यम से माँ ने अपना परिचय देकर कहा कि उन्हें राक्षसों के भय से मुक्त करने हेतु वह कन्या रूप धरकर आई है और अपने अंश रूप में खेगसू नामक स्थान पर रहना चाहती है। इतना कहकर वह कन्या लुप्त हो गई। वहाँ उपस्थित लोग देवी के कथनानुसार खेगसू पहुँचे और निर्धारित स्थान पर मंदिर बनाने के लिए जब खुदाई का काम शुरू हुआ तो नीचे मिट्टी में दबी अष्टभुजा वाली एक दिव्य मूर्ति मिली।

ग्रामीणों ने वहाँ मंदिर और एक कोठी (भंडार) का निर्माण करवाकर देवी की मूर्ति को ब्राह्मणों की सहायता से मंदिर में स्थापित किया। देवी की मान्यता इस क्षेत्र में

दूर-दूर तक है। देवी की प्रतिमा बहुमूल्य होने के कारण इसे चुराने का कई बार प्रयत्न किया गया, परन्तु दैवी-शक्ति के कारण चोरों को उसे राह में ही छोड़ना पड़ा।

केदारनाथ

गाँव : गुहांटी, तहसील : आनी।

मूल स्थान एवं मंदिर : गुहांटी में छलैमा नामक स्थान।

भंडार : गुहांटी।

स्थापत्य : देवता का प्राचीन मंदिर प्रस्तर निर्मित चार दीवारों का था। इसके स्थान पर सन् 2000 में लकड़ी और पत्थर से एक मंज़िल के मंदिर का निर्माण किया गया है। इसकी दो-तरफा ढलानदार छत एक ओर स्लेट से और दूसरी ओर टीन से ढकी है। दीवारों में मिट्टी की लिपाई हुई है तथा फर्श सीमेंट का है। मंदिर के साथ पवित्र जल की एक बावड़ी है। इसकी मान्यता चार धाम जैसी है, इसलिए इसमें मृतकों की अस्थियाँ भी विसर्जित की जाती हैं, विशेष पर्वों पर लोग यहाँ स्नान करने भी आते हैं।

अधिकार क्षेत्र : आनी खंड की बखनाओं, जाबन व नम्होग पंचायतें।

प्रबंध : प्रधान की अध्यक्षता में समिति।

पूजा : प्रत्येक मास की संक्रांति को पुरुष ही पूजा करते हैं।

रथ : नहीं है।

मोहरे : दो। मंदिर में शिवलिंग स्थापित है।

मेले-त्योहार : वैशाख मास में साक मेला लगता है। इस मेले में केदारनाथ के प्रभाव क्षेत्र की तीनों पंचायतों के देवता शामिल होते हैं और वापसी में वे केदारनाथ की बावड़ी से जल ले जाते हैं।



जनश्रुति : गुहांटी से लगभग एक किलोमीटर नीचे छलैमा नामक स्थान में किसी व्यक्ति को प्राचीन समय में एक पिंडी मिली। देव-आस्था के कारण उसने पिंडी के बाहर पत्थर की चार-दीवारी खड़ी कर प्रतिदिन उस पिंडी की पूजा शुरू कर दी। धीरे-धीरे क्षेत्र के अन्य लोगों ने भी इसे आते-जाते नमन करना आरम्भ किया। जैसे-जैसे लोगों की मनोकामनाएँ पूर्ण होने लगीं, उनकी इसके प्रति श्रद्धा बढ़ती गई। काफी समय बाद उस व्यक्ति को, जिसे सबसे पहले पिंडी मिली थी, दैवी शक्ति ने स्वप्न में दर्शन देकर कहा कि जिस पिंडी की वह पूजा करता है, वह केदारनाथ की है, जो इस क्षेत्र का रक्षक देवता है। अपने प्रभाव से यह देवता कई पंचायतों का अधिष्ठाता बना।

खलगाड़ी देवता

गाँव : करोट, तहसील : आनी।

मूल स्थान : खलगाड़।

मंदिर : करोट।

भंडार : कलाली।

स्थापत्य : देवता का काष्ठ-प्रस्तर निर्मित 'देवरा' लगभग 200 वर्ष पुराना है। ढलवाँ छत स्लेटों से आच्छादित है।

अधिकार क्षेत्र : गाँव करोट, छनास, लोट, कांडी, सिनवी, कलाली, लांबीधार, दोघरी बील।

प्रबंध : प्रधान की अध्यक्षता में समिति।

न्याय प्रणाली : मंदिर समिति द्वारा।

पूजा : प्रातः-सायं पंचोपचार पूर्वक।

मोहरे : नहीं हैं, देवता का प्रतीक एक त्रिशूल है।

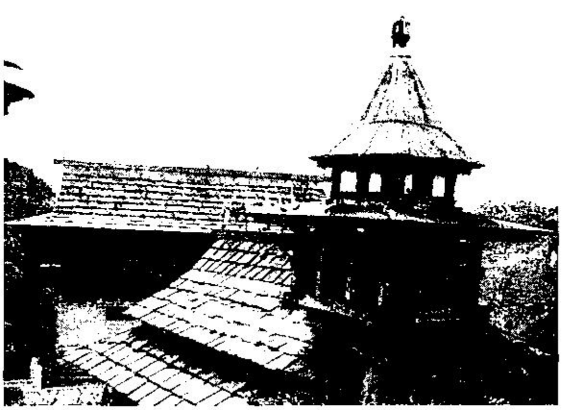
मेले-त्योहार : 2 श्रावण को देवता करोट गाँव से खलगाड़ जाता है। यह यात्रा एक पर्व के रूप में होती है।

जनश्रुति : देवता खलगाड़ी की उत्पत्ति कृष्ण अवतार के रूप में सर्वप्रथम शुआ कमरू लाहुल में हुई मानी जाती है।

वहाँ से वह बैहना सराहन पहुँचा, जहाँ माता भीमा काली के साथ उसे आज लांकड़ा वीर के नाम से जाना जाता है। यहाँ उसने हुरशू नामक स्थान की माँग की, लेकिन वहाँ का देवता इसके लिए राज़ी नहीं हुआ। तब देवता वापिस बैहना आया और मछली का रूप धारण कर नदी को पार करके जुडलू पहुँचा। वहाँ भी स्थान न मिलने के कारण वह शवाड़ गया और फिर खुडीगाड़ में आकर जल देवता से और आगे कुंईर में व्यास ऋषि से मिला। कुंईर से पनेऊ नामक स्थान में गया। वहाँ पनेऊई नाग के साथ कुछ दिन रहकर खलगाड़ आया और पशुधन का रक्षक बनकर वहीं रहने लगा। लोगों का विश्वास है कि यदि कोई पशु बीमार हो जाए तो इसकी मनौती करने पर वह ठीक हो जाता है। यह वर्ष में होने वाली फसल और घटनाओं की भविष्यवाणी भी करता है। देवता का स्थान नाले में एक पेड़ के नीचे है। मान्यता है कि यदि श्रद्धालु यहाँ लोहे के औज़ार चढ़ा कर मन्नत करें तो वह पूर्ण हो जाती है। इसके चमत्कार से प्रभावित होकर करोट वासियों ने अपने गाँव में मंदिर का निर्माण कर चिह्न स्वरूप त्रिशूल बनाकर उसे मंदिर में स्थापित कर दिया।

खुडीजल देवता

गाँव : देहुरी, तहसील : आनी।
मूल स्थान : खुडीगाड़ (देहुरी)।



मंदिर एवं भंडार : देहुरी।
शाखा मंदिर : समस्त उत्तरी भारत में।
स्थापत्य : काठकुणी शैली में निर्मित एक मंज़िल का यह मंदिर द्विछतीय है। इसकी दीवारों में काष्ठकला का सुंदर कार्य हुआ है। इसमें रामायण, नवग्रहों और देवताओं के चित्र उकेरे गए हैं। मंदिर की निचली छत चौतरफा और ऊपर की छत तीन ओर को ढलानदार है। इसके ऊपर एक ओर कुरड़ लगा है तथा दूसरी ओर मेरु (पैगोडा) बना हुआ है, जिसके शिखर पर कलश सुशोभित है। मंदिर परिसर में ही लकड़ी व पत्थर से बनी नौ मंज़िल की 'कोठी' है। स्लेटों से ढकी इसकी ढलानदार छत पर कुरड़ स्थापित है।
अधिकार क्षेत्र : गाँव रघुपुर, नारायणगढ़, सिरीगढ़, मानगढ़, बुशैहरगढ़।
प्रबंध : प्रधान की अध्यक्षता में समिति।
न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से, लड्डू डालकर या कारी विधि से।
पूजा : प्रातः-सायं पंचोपचार पूर्वक।
रथ : चिड़ी शैली।
मोहरे : बत्तीस।
मेले-त्योहार : 9 वैशाख को लगौटी मेला, 20 आषाढ़ को देहुरी मेला जिसमें अन्य देवता भी सम्मिलित होते हैं। भादों मास में रक्षाबंधन के दिन जंगल से 'पलैच' लाकर मंदिर के प्रांगण में ध्वज रूप में गाड़ते हैं और इसकी पूजा करते हैं। इस पलैच को क्षेत्र-रक्षक माना जाता है। यह आसमानी बिजली से रक्षा करता है।
जनश्रुति : गाँव देहुरी के खुडीगाड़ नामक स्थान में भेखल की झाड़ी के नीचे किसी व्यक्ति को एक शिवलिंग मिला। लोगों ने मंदिर निर्माण के लिए जब उस स्थान की खुदाई की तो उस झाड़ी के नीचे पानी का एक स्रोत निकला। तब लोगों ने वहाँ से लगभग एक फर्लांग दूर मंदिर का निर्माण कर शिवलिंग को वहाँ प्रतिष्ठित किया और भेखल के तने का एक ढोल बनाया, जो देवता का प्रथम वाद्य है।

खोलू देवता

गाँव : देहुरी, तहसील : आनी।
मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : देहुरी।
स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर से पहाड़ी शैली में निर्मित पाँच मंज़िल का मंदिर लगभग 200 वर्ष पुराना है। ढलवाँ छत स्लेटों की है और शिखर पर कुरड़ स्थापित है।

व्यवस्था : कारदार की अध्यक्षता में समिति।
न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से, लड्डू डालकर अथवा 'पूछ' द्वारा।
पूजा : प्रातः-सायं धूप-दीप से।
रथ : चिड़ी शैली।
मोहरे : मुख्य एक व शेष तेईस।

मेले-त्योहार : रक्षा बंधन से गुग्गा नवमी तक एकादश रुद्र मेला, इसमें देवता अपनी 'हार' (क्षेत्र) का फेरा लगाता है और प्रजा-जन जौ का आटा, दाने और घी अर्पित करते हैं। देवता का गूर खेलते हुए उस आटे को खाता है। यह एक अनोखा खेल है जो प्रथा-रूप में आज भी निभाया जाता है।

जनश्रुति : जंजैहली सराज के बैचला नामक गाँव में खोल़ (अखरोट) के वृक्ष के नीचे उत्पन्न होने के कारण देवता को खोलू नाम से जाना जाता है।

वहाँ से रतन नाम का ब्राह्मण और नहर नाम का राजपूत खोलू देवता को गज़ के रूप में देहुरी गाँव में लाए। जहाँ उनकी मुलाकात कैलड़ी देवी से हुई। वह उन्हें खुडीजल देवता के पास ले गई।

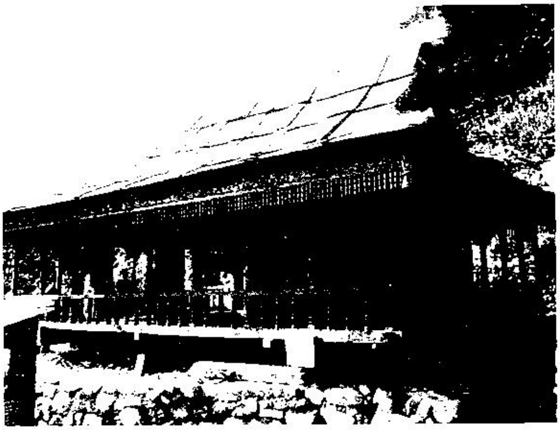
उसने खोलू देवता को अपना मंत्री बनाया। तब से देवता खोलू खुडीजल के साथ रहने लगा। इसकी प्राचीन मूर्ति देहुरी गाँव के एक ब्राह्मण के घर में रहती है, जो इसका कारदार भी है।

गड़ूमी नाग

गाँव : कुटवा, तहसील : आनी।
मूल स्थान एवं मंदिर : कुटवा।
शाखा मंदिर : गाँव नगौट, गड़ूम, परकौट।
भंडार : जटेड़।
स्थापत्य : लगभग 150 वर्ष पुराना दो मंज़िल का यह मंदिर पत्थर के चबूतरे पर बना है। स्लेटों से आच्छादित छत पर कुरड़ स्थापित है। दीवारों पर गोबर-मिट्टी से लिपाई की गई है। काष्ठ पर सुंदर नक्काशी हुई है। मंदिर के साथ सराय भवन है, जिसमें दो कक्ष हैं। सामने मैदान है जहाँ मेले लगते हैं।
अधिकार क्षेत्र : गाँव कुटवा, नगौट, जटेड़, नागणीधार, झमेड़, चकलेड़, पाली, चकाली, कांडा।
न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।
पूजा : प्रातः-सायं आठ बजे।
रथ : जुगा शैली।
मोहरे : एक मुख्य मोहरा, दस अन्य मोहरे।
मेले-त्योहार : कोहिला में शालणू मेला, हारगी मेला, ज्येष्ठ मास की संक्रांति को त्वार (त्योहार)।
जनश्रुति : यह नाग देवता बसाहर से गड़ूम व नगौट होकर कुटवा आया। यहाँ इसने लोगों को अनेक चमत्कार दिखाए, जिससे प्रभावित होकर लोगों ने मंदिर बना कर इसकी स्थापना कर के पूजा आरंभ की। जब यहाँ मनौती करने पर लोगों की इच्छाएँ पूर्ण होने लगीं तो धीरे-धीरे इस क्षेत्र के लोगों की देवता के प्रति श्रद्धा बढ़ी। आज पूरी ग्राम पंचायत कोहिला इसके अधिकार में है।

गड़ूमी नाग

गाँव : शगागी, तहसील : आनी।
मूल स्थान एवं मंदिर : शगागी।
भंडार : रेड (खुन्न)।
स्थापत्य : पत्थर के थड़े पर लकड़ी-पत्थर से बना यह मंदिर दो मंज़िल का है। लगभग 5 वर्ष पुराने इस मंदिर



की ढलानदार छत स्लेटों से आच्छादित है, जिसके शिखर पर कुरड़ और कलश स्थापित हैं। 'परौल्' के काष्ठ पर उत्कृष्ट कलाकृतियाँ उकेरी हैं। बाहरी दीवारों पर सीमेंट से लिपाई की गई है।

अधिकार क्षेत्र : खणी पंचायत के सभी गाँव।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।

पूजा : प्रात-सायं आठ बजे धूप-दीप से।

रथ : जुगा शैली।

मोहरे : एक मुख्य व पाँच अन्य।

मेले-त्योहार : चार बैसाख को चोगले जाच तथा 28 व 29 प्रविष्टे आषाढ़ को खुन्न में शालणू मेला लगता है।

जनश्रुति : गड़ूमी नाग की उत्पत्ति परकोट नामक स्थान में हुई बताते हैं। वहाँ से यह बदोठी होकर शगागी पहुँचा। शगागी में इसकी आरम्भ में केवल चार परिवारों ने पूजा-अर्चना शुरू की। जैसे-जैसे लोगों की मनोकामनाएँ पूर्ण होने लगीं, क्षेत्र के अन्य लोगों की इसके प्रति आस्था बढ़ी। आज यह पूरी खणी पंचायत के लोगों का आराध्य देवता है।

चजाई नाग

गाँव : खादवी, तहसील : आनी।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : खादवी।

स्थापत्य : स्लेटों से आच्छादित पहाड़ी शैली का नवनिर्मित दो मंज़िल का मंदिर।

अधिकार क्षेत्र : गाँव खादवी, काफटी, कठार।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।

पूजा : प्रातः-सायं जड़ी-धूप से।

मोहरे : दस।

मेले-त्योहर : फलों को ओलावृष्टि से बचाने हेतु वैशाख मास में मंदिर में एक पर्व मनाया जाता है, फाल्गुन मास में फागली मेला, जिसमें गाँव जाओं व नाली के लोगों को बुलाया जाता है। उनके मंदिर में प्रवेश करते ही देवता प्रकट होता है और प्रजा सहित वह गाँव की परिक्रमा करता है। वापिस आकर देवता जब मंदिर में प्रवेश करता है तो लोग पूजा-अर्चना करते हैं।

जनश्रुति : पाताल से पृथ्वी पर आए एक नाग ने घूमते हुए सर्वप्रथम डौहवी ग्राम से ऊपर पवित्र स्थान चजाया में कुछ समय तक निवास किया और वह चजाई नाग के नाम से प्रसिद्ध हुआ। वहाँ से वह सरेउलसर, ख्वांडागही, शगागी, गड़ूम से होते हुए पुल लगाकर चूड़ नामक स्थान पर पहुँचा, जो कालिका का निवास स्थान था। उन्होंने उसे वहाँ नहीं टिकने दिया तो दुखी होकर वह मरूटी-सेरी होता हुआ तराला नामक स्थान पर पहुँचा, जहाँ तराली नाग ने देवता को रहने के लिए ढाई हाथ भूमि दी। कुछ समय वहाँ रहने के बाद वह खादवी नामक स्थान पर चला गया और वहाँ अपना स्थायी निवास बनाया। उसकी कृपा से जब लोगों की मन्नतें पूरी होने लगीं तो उन्होंने एक मंदिर बनाकर उसमें देवता की स्थापना की। सदियों के अंतराल बाद लोगों ने वहाँ पर नए मंदिर के निर्माण के लिए पुराने को उखाड़ कर खुदाई की तो नीचे से भगवान शिव और केदार बच्छे (बछड़े) की मूर्तियाँ निकलीं। मंदिर निर्माण के बाद देवता से आज्ञा लेकर पीतल की मूर्ति बनवाकर उसकी व शिव तथा केदार बच्छे की स्थापना की गई।

चजाई नाग

गाँव : चजाया, तहसील : आनी।
मूल स्थान तथा मंदिर : चजाया।
शाखा मंदिर एवं भंडार : गाँव डौहवी।
स्थापत्य : देवता का गाँव चजाया वाला प्राचीन मंदिर क्षतिग्रस्त हो चुका है। अब गाँव डौहवी में नाग देवता का नया मंदिर निर्माणाधीन है।
अधिकार क्षेत्र : सम्पूर्ण देवठी पंचायत।
प्रबंध : प्रधान की अध्यक्षता में समिति।
न्याय प्रणाली : गूर व समिति के माध्यम से।
पूजा : प्रातः-सायं धूप-दीप से।
रथ : जुगा शैली।
मोहरे : एक मुख्य तथा छह अन्य।
मेले-त्योहार : आषाढ़ मास में शाड़नू मेला। पहले दिन देवता 'गणैई' करता है, जिसमें देवता के उस स्थान पर प्रकट होने के सम्बंध में बताया जाता है। लोग अपनी समस्याओं के बारे में 'पूछ' डालते हैं और गूर उनका समाधान बताता है। महिलाएँ सुन्दर वस्त्राभूषण पहनकर गीत गाती हुई गाँव की परिक्रमा करती हैं। 'जतराला' मेला की कोई निश्चित तिथि नहीं होती। गूर इसके लिए शुभ मुहूर्त देखकर देवता के कारिंदों को सूचित कर देता है, उसी के अनुसार मेले का आयोजन किया जाता है।
जनश्रुति : चजाई नाग का वास पहले चजाया चोटी पर था। वहाँ से वह वानर के वेश में गाँव डौहवी आया और उसी रूप में ग्रामवासियों को बताया कि वह चजाई नाग है और वहाँ रहना चाहता है। देवता की आज्ञानुसार लोगों ने उसे पूजना आरम्भ किया और उनकी मनोकामनाएँ पूर्ण होने लगीं। अब डौहवी में देवता के निमित्त काठ-कुणी शैली का मंदिर बनाया जा रहा है।

चलोली मशाण

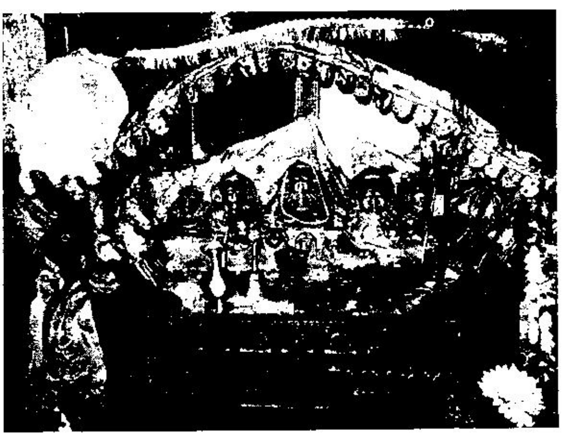
गाँव : चलोली, तहसील : आनी।
मूल स्थान एवं भंडार : चलोली।
स्थापत्य : मंदिर नहीं है, देवता की स्थापना एक व्यक्ति के घर में है।
अधिकार क्षेत्र : समस्त व्यूंगल पंचायत।
न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से। गूर जब खेलता है तो कहता है 'हू बाता पोरू आओ, मूँ ऐदी सौगे सब कुछ ठीक करू'।
पूजा : प्रातः-सायं धूप-दीप से।
जनश्रुति : किसी व्यक्ति को चलोली गाँव के श्मशान में एक पेड़ के नीचे मोहरा मिला। वह उसे अपने घर ले आया। अभी उसकी स्थापना के बारे में बातचीत हो ही रही थी कि उनमें से एक को 'खेल' आ गई। उसने कहा कि वह मशाण देवता है और इसी घर में रहना चाहता है। अतः उसके मंदिर की स्थापना न की जाए और उसके साथ उस पेड़ की भी मान्यता हो जहाँ उसकी उत्पत्ति हुई है। तब से देवता की स्थापना उसी घर में है और जब किसी व्यक्ति को भूत-प्रेत का प्रकोप होता है तो उस प्रभावित व्यक्ति के शरीर से



रेशमी वस्त्र छुहाया जाता है और ऐसी प्रार्थना की जाती है कि ठीक होने पर यह वस्त्र मशाण देवता को चढ़ा दिया जाएगा। इसका प्रभाव घंटे-दो घंटे के भीतर दिखाई देता है। तब वह वस्त्र उस पेड़ पर चढ़ाया जाता है, जहाँ से देवता का मोहरा प्राप्त हुआ था।

छैंजणू देवता

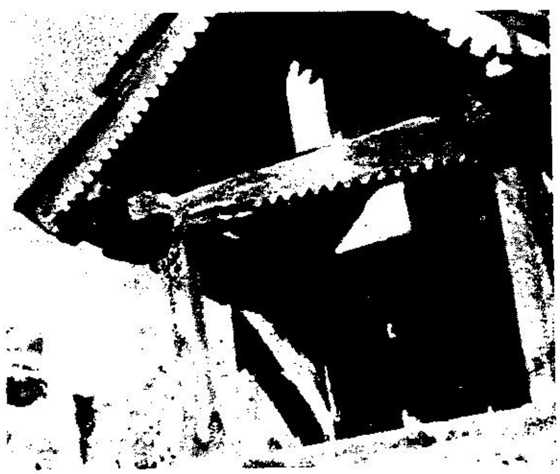
गाँव : निंगलू, तहसील : आनी।
मूल स्थान : छैंजण (बंजार)।
मंदिर एवं भंडार : निंगलू।
स्थापत्य : काष्ठ व प्रस्तर निर्मित लगभग आठ वर्ष पुराना मंदिर दो मंज़िल का है। बाहर से इसकी लिपाई सीमेंट से की गई है। छत पत्थर की स्लेटों की है।
अधिकार क्षेत्र : समस्त पोखरी पंचायत।
प्रबंध : प्रधान की अध्यक्षता में समिति।



न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।
पूजा : प्रातः-सायं धूप-दीप से।
रथ : जुगा शैली।
मोहरे : कुल आठ। एक मुख्य मोहरा तथा सात अन्य।
जनश्रुति : किसी समय निंगलू गाँव का सेसराम नाम का व्यक्ति देवता को बंजार क्षेत्र के छैंजण गाँव से यहाँ लाया। काफी समय तक केवल वही परिवार इसे पूजता रहा। कालांतर में मान्यता बढ़ने पर लोगों ने गाँव में इसके मंदिर का निर्माण किया और यह देवता क्षेत्र के अन्य लोगों द्वारा भी पूजा जाने लगा।

जमलू देवता

गाँव : जुहड़, तहसील : आनी।
मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : जुहड़।
शाखा मंदिर : रशांडी।
स्थापत्य : काष्ठ स्तंभों पर बना चारों ओर से खुला मंदिर है, जिसकी ढलवाँ छत स्लेटों से ढकी है।



अधिकार क्षेत्र : करशैईगाड़ पंचायत, फनौटी।
प्रबंध : प्रधान की अध्यक्षता में समिति।
न्याय प्रणाली : कारदार द्वारा।
पूजा : प्रतिदिन धूप-दीप से।
मोहरे : देवता के प्रतीक दो घोड़े हैं।
जनश्रुति : जुहड़ गाँव का धर्मपाल नामक ब्राह्मण मज़दूरी करने रशांडी गाँव जाता था। वहाँ एक व्यक्ति उसका धर्मभाई बन गया। एक बार जब वह वहाँ से लौट रहा था तो उसके धर्मभाई ने उसे उपहार-स्वरूप लकड़ी का एक संदूक दिया। घर आकर अपना सामान रखने के लिए जब

वह संदूक खोलने लगा तो उसे खेल आई। परिवार वालों के पूछने पर उसने बताया कि संदूक में चाँदी के घोड़े के रूप में जमलू देवता है, यहाँ उसकी पूजा की जाए। उसने घोड़े को अपने पूजा-स्थल में रखकर उसे पूजना आरंभ कर दिया। एक मास बाद उसके घर के पिछवाड़े में हरा घास फैलने लगा। जब उसकी पहचान करवाई गई तो पता चला कि वह वेठर नामक पौधा है। उसने इसे जमलू देवता का चमत्कार माना और ग्रामवासियों के साथ मिलकर एक छोटा-सा मंदिर बनाया। देवता ने धर्मपाल को अपना गूर नियुक्त किया। कालांतर में प्रजाजनों ने देवता के निमित्त पीतल का डेढ़ किलो का व चाँदी का दो सौ ग्राम का घोड़ा बनाया और साथ में चिमटा, गज, घंटी आदि बनाए।



देवता को पशु-बलि नहीं दी जाती। त्योहारों व यज्ञ के अवसर पर देवता के निमित्त नारियल की पूर्णाहुति दी जाती है।

जमलू देवता

गाँव : शौहण, तहसील : आनी।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : शौहण।

स्थापत्य : चादर व स्लेट की छत वाला काष्ठ-प्रस्तर निर्मित पुराना मंदिर है।

अधिकार क्षेत्र : गाँव शौहण।

प्रबंध : कारदार द्वारा।

न्याय प्रणाली : पर्ची या गोबर के लड्डू डाल कर।

पूजा : प्रातः-सायं गुग्गुल धूप से।

मोहरे : पचास-साठ घोड़ों की प्रतिमाएँ, त्रिशूल व तलवारें रखी हुई हैं।

मेले-त्योहार : वैशाखी, जन्माष्टमी तथा महाशिवरात्रि।

जनश्रुति : सन् 1930 ई. में गाँव शौहण का सालिगराम नाम का व्यक्ति अपने बेटे का मुंडन करवाने मलाणा के जमलू देवता के मंदिर में गया था और लौटते समय वहाँ से देवता का चिह्न अपने साथ लाया था। आरम्भ में वह व्यक्ति अपने घर में ही देवता की पूजा-अर्चना करता रहा, परन्तु बाद में उसके परिजनों ने एक छोटा-सा मंदिर बनाकर उसमें देवता की स्थापना की। जमलू

जल देवता

गाँव : धार, तहसील : आनी।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : धार।

स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर से निर्मित देशज शैली के मंदिर में मिट्टी की लिपाई की गई है व छत स्लेटों की है।

अधिकार क्षेत्र : गाँव धार, कुटवा, जौह, काफटी, धनैर।

प्रबंध : प्रधान की अध्यक्षता में समिति।

न्याय प्रणाली : समिति के माध्यम से।

पूजा : प्रातः-सायं प्रतिदिन धूप-दीप जला कर।

रथ : जुगा शैली।

मोहरे : दो मुख्य तथा चार अन्य।

मेले-त्योहार : धार दशहरा, जल जातर।

जनश्रुति : धार गाँव में एक मुज़ारे को किसी ज़मीनदार के खेत में हल जोतते समय काँसे की साठ थालियाँ मिलीं। ज़मीनदार को जब इस बात का पता चला तो उसने मुज़ारे से वे थालियाँ ले लीं। इस बात से क्रुद्ध होकर मुज़ारा खुडीजल नामक स्थान पर गया और तूम्बी में वहाँ से जल भर कर वह शमशर गाँव पहुँचा। उस जल से वह ज़मीनदार के विनाश का संकल्प करने ही

वाला था कि शमशरी महादेव ने प्रकट होकर उसे ऐसा ग़लत काम करने से रोका और वहाँ से जाने के लिए कहा। दुःखी मन से मुज़ारा पानी की तूम्बी लेकर वापिस धार गाँव पहुँचा। उसने तूम्बी को बाहर रख दिया और स्वयं घर के अंदर चला गया। प्रातः जब वह बाहर निकला तो उसने देखा कि तूम्बी के टूट कर दो टुकड़े हो गए थे और वहाँ बान का एक वृक्ष उग आया था। मुज़ारा उस वृक्ष को दराट से काटने लगा तो दराट उसी में फँस गया और आकाशवाणी हुई कि वह खुडीजल देवता है। तब से लोग इस वृक्ष को जल देवता के रूप में पूजते हैं और लोहे के औज़ार चढ़ाते हैं। कुछ वर्ष पूर्व देवता के लिए मंदिर, मोहरे और रथ का निर्माण किया गया है।

जाँजा जल देवता

गाँव : कुई, तहसील : आनी।
मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : कुई।
शाखा मंदिर : शवाड़, कटाहर, रोठी, जाबू।
स्थापत्य : देवता की लगभग 25 वर्ष पुरानी दो मंज़िल की



कोठी काठकुणी शैली में लकड़ी-पत्थर से निर्मित है, जिसकी छत स्लेटों की है। मंदिर काष्ठ-प्रस्तर से काठकुणी शैली में नया बन रहा है।

अधिकार क्षेत्र : रोपा, मुंडदल, कुंगश व कराणा पंचायतें।
प्रबंध : प्रधान की अध्यक्षता में समिति।
न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।
पूजा : प्रातः-सायं पारम्परिक विधि से।
रथ : नहीं है। मंदिर में एक कड़ाह है (चित्र)।
मेले-त्योहार : जतराला मेला कराणा, जिसकी तिथि गूर द्वारा निश्चित की जाती है।
जनश्रुति : कहते हैं कि प्राचीन समय में आक्रमणकारियों ने शमशरी महादेव के चार कड़ाहों में से एक को उठाकर ले जाने का प्रयत्न किया था, लेकिन जाँजा गाँव के नेगी ने लोगों की सहायता से आक्रांताओं के प्रमुख को मार डाला और कड़ाह को कुई गाँव में लाकर रख दिया। तब से इसे जाँजा जल देवता के नाम से जाना जाने लगा।

जोगेश्वर महादेव

गाँव : दलाश, तहसील : आनी।
मूल स्थान, मंदिर व भंडार : दलाश।
शाखा मंदिर : रठौ व तांदी।
स्थापत्य : पैगोडा संयोजन शैली में निर्मित मंदिर की छत स्लेट की है और काष्ठ पर सुंदर नक्काशी की गई है।
अधिकार क्षेत्र : सीरीगढ़ की छह पंचायतें।
प्रबंध : प्रधान की अध्यक्षता में समिति।



न्याय प्रणाली : देवता के गूर के माध्यम से। इसके अतिरिक्त विशेष परिस्थितियों में मंदिर कमेटी का फैसला भी सर्वमान्य होता है।

पूजा : प्रातः-सायं प्रतिदिन पारम्परिक विधि से। पूजा हेतु जल बजूण बा (बावली) से लाया जाता है, जहाँ लोगों का पानी पीना निषिद्ध है। विशेष पर्वों पर देवता की पूजा वाद्ययंत्रों की धुन के साथ की जाती है।

रथ : चौपाया।

मोहरे : ग्यारह।

मेले-त्योहार : रक्षा बंधन से एक दिन पूर्व देवता का मोहरा व अन्य सामान शिवालय (कोठी) से पीढ़ी में उठाकर मंदिर स्थल पर लाया जाता है। देवता जलती मशालों के सुरक्षा घेरे में परिक्रमा करता है और लोग नृत्य करते हैं। इस दिन देवता के लिए नए वस्त्र बनाए जाते हैं, भादों मास में गणेश चतुर्थी के दिन लगने वाले भदांजो मेले में जोगेश्वर महादेव रथ में अलंकृत होकर 'सौह' में आता है और नृत्य करता है। लोग उस पर फूल, अखरोट व मोड़ी (अन्न के भूने हुए दाने) चढ़ाकर शीश नवाते हैं, मार्गशीर्ष मास की अमावस की रात्रि को मनाई जानेवाली 'बूढ़ी दीवाली' में लोग अपने घरों से लकड़ी के बड़े-बड़े ठेले लाकर मंदिर स्थल पर पहुँचाते हैं और अलाव तैयार करते हैं। तब गूर खेलते हुए जलती हुई लकड़ियों पर उछल-कूद करता है। इसके बाद देवता जोगेश्वर महादेव इस अग्नि के गिर्द नाचते हुए परिक्रमा करता है और ब्राह्मण 'काव गीत' गाते हैं। प्रातःकाल मेला लगता है।

जनुश्रुति : प्राचीन काल में देवता का मोहरा गंछवा गाँव के एक व्यक्ति सिद्धूराम को अठो स्थान पर अपने खेत में हल जोतते समय मिला था। वह उसे कपड़े में लपेट कर अपने घर ले आया। देखते ही देखते उस मोहरे के चारों ओर चींटियाँ घूमने लगीं। कुछ देर बाद चींटियों की कतार उस घर से आगे बढ़ी और लगभग तीन किलोमीटर आगे दलाश नामक स्थान में उन्होंने एक मंदिर का आकार बनाया। सिद्धू समझ गया कि देवता यहाँ स्थापित होना चाहता है। उसने वहाँ एक भव्य मंदिर का निर्माण करवाकर उस अलौकिक मोहरे को स्थापित किया। योगेश्वर शब्द का अपभ्रंश जोगेश्वर हो गया। इस कारण इसे जोगेश्वर महादेव के नाम से जाना जाता है।

झाकड़ू नाग

गाँव : टिप्पर, तहसील : आनी।

मूल स्थान : झाकड़ू सर।

मंदिर एवं भंडार : टिप्पर।

स्थापत्य : पुराने देव-स्थान में काष्ठ व प्रस्तर निर्मित तीन मंज़िल की कोठी लगभग दस वर्ष पूर्व निर्मित हुई है, जिसके बाहर सीमेंट से लिपाई की गई है। छत स्लेटों से ढकी है।

अधिकार क्षेत्र : गाँव टिप्पर, पोखरी, छीकानाल, दरतेड़।

प्रबंध : प्रधान की अध्यक्षता में समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।

पूजा : सुबह-शाम धूप-दीप जलाकर।

रथ : पालकी के आकार का।

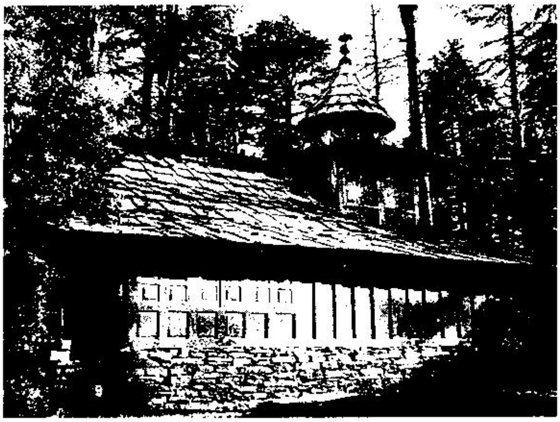
मेले-त्योहार : 13 अप्रैल से 15 अप्रैल तक झाकड़ू नामक स्थान में 'टिप्पर जागरा' मनाया जाता है। यह मेला टिप्पर, पोखरी, छीकनाल तथा दरतेड़ निवासियों द्वारा देवता की उत्पत्ति की खुशी में मनाया जाता है।

जनश्रुति : इस देवता की उत्पत्ति मान सरोवर से मानी जाती है। मान्यता है कि एक बार यह भटकते हुए सरेउलसर पहुँचा। वहाँ इसकी भेंट बूढ़ी नागिन से हुई। बूढ़ी नागिन ने इसे अपना आशीर्वाद देकर आगे जाने को कहा। वहाँ से यह जलोड़ीपास पहुँचा। यहाँ भगवती काली के साथ जुआ खेला और भगवती को जुए में हरा कर रघुपुर गढ़ पहुँचा। वहाँ पाँच वीरों का स्थान होने के कारण वह आगे गया और देवी शिकारी के पास पहुँचा। कुछ दिन देवी के आश्रय में रहने के बाद शवाड़ होकर मलागा पहुँचा। वहाँ से पनेऊ होता हुआ झाकड़ू नामक स्थान में पहुँचा। उसे झील पसंद आई, अतः वह वहीं रहने लगा। लोक विश्वास है कि कालांतर में स्थानीय लोगों को झील में स्नान करते हुए नाग देवता का चिह्न, गज़ और एक मूर्ति मिली। लोगों ने यहाँ मंदिर का

निर्माण कर झील में से मिले चिह्नों को स्थापित किया। झाकड़ू नामक स्थान में उत्पत्ति होने के कारण यह झाकड़ू नाग नाम से विख्यात हुआ। स्थानीय लोगों की हर मनौती पूरी होने के कारण लोगों की इसके प्रति आस्था बढ़ी और उन्होंने गाँव टिप्पर में इसका कोठीनुमा मंदिर बनाया, जहाँ वर्तमान में देवता के मोहरे और रथ आदि हैं।

टकरासी नाग

गाँव : टकरासी, तहसील : आनी।
मूल स्थान : गाँव शुरल।
मंदिर : टकरासी।
भंडार : गाँव ठारवी।
शाखा मंदिर : बाल्ह, सौईं।



स्थापत्य : टकरासी गाँव में देवता का एक छोटा 'देवरा' लगभग पाँच सौ वर्ष पुराना है, जहाँ देवता की प्राचीन मूर्ति स्थापित है। ठारवी गाँव में तीन मंज़िल की नवनिर्मित कोठी है, जिसकी छत स्लेटों से ढकी है। इसमें प्रयुक्त लकड़ी पर सुंदर कलाकृतियाँ उकेरी हैं। कोठी के बाहर की ओर सीमेंट की लिपाई की गई है। इसमें देवता की अष्ट-धातु की प्रतिमा तथा रथ, मोहरे आदि रहते हैं।
अधिकार क्षेत्र : टकरासी, करशैई गाड़, फनौटी, लगौटी, विशलाधार तथा मुहान पंचायतें।
प्रबंध : प्रधान की अध्यक्षता में समिति।
न्याय प्रणाली : समिति द्वारा।
पूजा : प्रातः-सायं पारम्परिक विधि से।
रथ : जुगा शैली।
मोहरे : एक मुख्य मोहरा तथा चौदह अन्य।
मेले-त्योहार : 20 आषाढ़ को कांड़ी धार मेला, ज्येष्ठ संक्रांति को जागरा, कुल्लू दशहरा, 11-12 वैशाख को सौईं में ठिरशू, 9 से 12 श्रावण को बाल्ह मेला।
जनश्रुति : यह नाग सुन्नी क्षेत्र के सेरी कचौन नामक स्थान से माहूँनाग, काऊ मुमेल, कमरूनाग, तगासी कांडा, बाड़ा आदि स्थानों पर गया और क्रमशः माहूँनाग, मुमेली महादेव, कमरू नाग, तगासी नाग, बालू नाग के नाम से प्रसिद्ध हुआ। बाड़ा से वह सकीरण गया जहाँ उसकी सकीरण महादेव से भेंट हुई। यहाँ से वह लांबी लांभरी में जोगणी माता से मिलकर छैरा कांडा गया। वहाँ से छैरा देवता को साथ लेकर दोनों बूढ़ी नागिन से मिलने सरेउलसर गए और वहाँ से आशीर्वाद ले कर रघुपुर गढ़ पहुँचे। वहाँ सकीरणी महादेव और जल देवता को पासा खेलते देख कर खेल सीखने की ज़िद्द करने लगे। लेकिन सकीरणी और जल देवता ने उन्हें वहाँ से भगा दिया। तब वे सुरगसीण नामक चोटी पर पहुँचे। इस चोटी से टकरासी नाग ने जल देवता को पुकार कर कहा
'तेला, बरेल़ा, बालू, चेला, छल़ाच जेठी हार लेई बेठा।'
यानी मैंने तेरी बड़ी हार (मान्यता क्षेत्र) तेला, बरेल़ा, बालू, चेला, छल़ाच को अपने अधिकार में ले लिया है। उसके बाद उनकी दनचोखरी में जोगणी माता से मुलाकात हुई। टकरासी नाग ने जोगणी माता से कहा कि वह उसके लिए चेर्षी (तीसरे साल दी जाने वाली भेंट) लेकर आएगा। दनचोखरी से वे शुरल नामक स्थान पर गए। वहाँ उन्होंने चार ग्वालों को पशु चराते हुए देखा। ग्वालों को टकरासी नाग ने साक्षात् दर्शन दिए। यह चमत्कार देखकर उन्होंने शुरल में नाग देवता का मंदिर बनाया। देवता ने इन चारों ग्वालों को सुहली पज़ैर, मुशैड़ू मौथा, छेंडी छंडाल तथा खाऊटी नाम दिए। अर्थात् सुहली को

पूजा का काम, मुशैड़ मौथा को चौकीदारी, छैंडी छंडाल को दाएँ-बाएँ बैठने और खाऊटी को देव वाद्य बजाने का कार्य सौंपा। शुरल से नाग देवता घूमते-घूमते टकरासी गाँव गया और चौतरी नामक पेड़ के नीचे विश्राम करने बैठा और वहीं टकरासी नाग नाम से स्थापित हो गया। क्षेत्र में देवता की मान्यता बढ़ने के कारण लोगों ने वाल्ह और सौई गाँवों में भी इसके मंदिर बनाए।

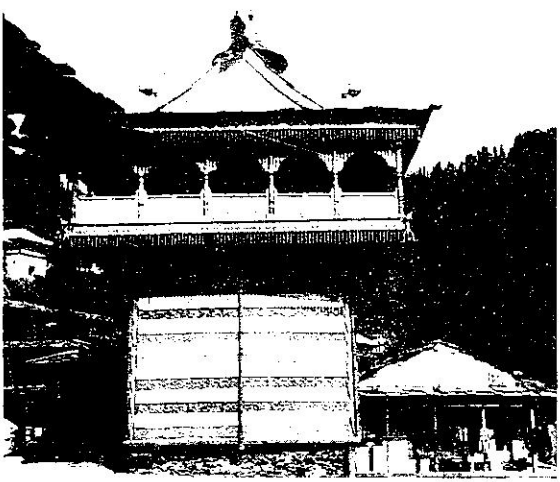
तराली नाग

गाँव : तराला, तहसील : आनी।

मूल स्थान : गाँव बाली।

मंदिर एवं भंडार : तराला।

स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर निर्मित दो मंज़िल का यह मंदिर वर्ष 1977 में पत्थर के चबूतरे पर बनाया गया है। मंदिर की दीवारों में सीमेंट का प्रयोग है तथा इसमें रंग-रोगन भी करवाया गया है। चारों ओर की ढलवाँ छत स्लेटों से आच्छादित है। छत पर दो कुरड़ एक-दूसरे के ऊपर जमा के निशान की तरह लगे हैं। कुरड़ के चारों कोनों पर कलश सुशोभित हैं तथा मध्य में मेरु (पैगोडा) बना हुआ है। मंदिर के मुख्य द्वार पर कलाकृतियाँ उकेरी गई हैं। साथ में देवता का थड़ा है और उससे आगे लगभग 50 मीटर का प्रांगण है,



जिसे नागे खौड़ (नाग का खलियान) कहते हैं। प्रांगण में पत्थर के चक्के बिछे हुए हैं। मंदिर के मुख्य द्वार के सामने पत्थर की पिंडी रूप में देवता पाताल भी स्थापित हैं।

अधिकार क्षेत्र : गाँव तराला, निचला तराला, शौहण, कलाह, नौतोड़, समासर, सरट, फनौटी, रघुपुर।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में देवता के कारिंदे।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से, पर्ची डालकर या गोबर के लड्डू द्वारा।

पूजा : प्रातः-सायं धूप-दीप से।

रथ : चिड़ी शैली।

मोहरे : मुख्य एक तथा चौदह अन्य।

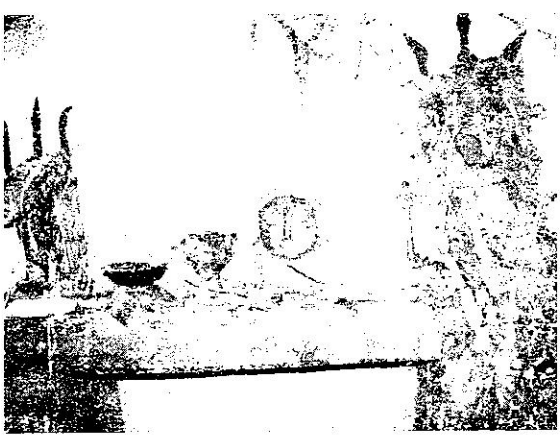
मेले-त्योहार : 24 प्रविष्टे वैशाख को कवाईथाच मेला, फाल्गुन व ज्येष्ठ मास की संक्रांति को देवता बाजे-गाजे सहित अपने मूल स्थान बाली गाँव में स्थित देवर (देवगृह) में प्रवेश करता है। उस समय वह अपनी प्रजा के दुःख व समस्याओं के बारे में सुनता है और तत्काल निवारण का प्रयास करता है। लोगों के सभी कार्य सिद्ध करता है। जिन लोगों की संतान नहीं होती, वे इन पर्वों में आकर देवता से मन्नत माँगते हैं और जब बच्चा हो जाए तो वे देवता को अपने घर आमंत्रित करते हैं। आषाढ़ मास की संक्रांति को देवता निचला तराला में जाता है और एक रात वहीं विश्राम कर, दूसरे दिन प्रातः जांद्री सौह में पहुँचता है, जहाँ मेला लगता है। शाम को वह अपने मंदिर लौट आता है।

जनश्रुति : किसी समय चार नाग पाताल लोक से पृथ्वी लोक में आए और भ्रमण करते हुए वे कुईकंडा नामक स्थान पर पहुँचे। तीन भाइयों को वहीं छोड़कर एक नाग तराला जोत पर 'रेखा ज़ान' नाम की एक चट्टान के पास पहुँचा और वहाँ रहनेवाली कालिका से अपने लिए स्थान माँगने लगा। उन्होंने उसे जुआ खेलने के लिए आमंत्रित किया और कहा कि यदि वह उन्हें जुए में हरा देगा तो वे उसे स्थान दे देंगी। उसने उन्हें लगातार सात बार हरा कर उनसे बाली नामक गाँव में रहने के लिए स्थान प्राप्त कर लिया। उस समय वहाँ 'माण-मरेछ' रहते थे। नाग ने उन्हें अपनी शक्ति से मार डाला और सारे गाँव पर अपना

अधिकार जमा लिया। इस गाँव में नाग देवता किसी को भी स्थान नहीं देता। कुछ वर्ष पूर्व लोगों ने यहाँ अपने मकान बनाकर उनमें रहना आरम्भ कर दिया था, परन्तु भूस्खलन में अकस्मात् उनके घर धँस गए। इसे देवता का प्रकोप मान कर वे वहाँ से लौट आए और तराला गाँव में ही रहने लगे। बाली में लोगों ने नाग का 'देवरा' बनाया। उस क्षेत्र में वह तराली नाग के नाम से विख्यात हुआ और लोगों ने देवता की स्वीकृति से तराला में मंदिर बनाकर उसमें देवता की स्थापना की। परन्तु बुजुर्गों का मानना है कि नाग की मूल शक्ति बाली के देवरे में ही है।

दराड़ू देवता

गाँव : खोई, तहसील : आनी।
मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : खोई।
शाखा मंदिर : गाँव शलाट।
स्थापत्य : काठकुणी शैली में निर्मित एक मंज़िल का मंदिर, जो स्लेटों से आच्छादित है।
अधिकार क्षेत्र : आनी खंड की नम्होग और जाबन पंचायतें।
प्रबंध : प्रधान की अध्यक्षता में समिति।
न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।
पूजा : मास में केवल संक्रांति के दिन।
रथ : नहीं है।



मोहरा : एक।
जनश्रुति : खोई गाँव के कुंभदास नामक व्यक्ति के किसी पूर्वज को खेत में हल जोतते समय एक पिंडी मिली, जिसे वह घर ले आया था। रात्रि को स्वप्न में उसे दृष्टांत हुआ कि जो पिंडी वह घर लाया है, वह दराड़ू देवता की है। गाँव में उसकी स्थापना की जाए। उस व्यक्ति ने स्वप्न की सारी बात गाँववालों को बताई और उन्होंने देवता के निमित्त मंदिर का निर्माण किया और उसमें पिंडी की स्थापना की। खोज करने को स्थानीय बोली में 'दराड़ू' कहते हैं। यह देवता गुम या चोरी हुई वस्तुओं का पता लगाने वाला है, इसलिए 'दराड़ू' नाम से प्रसिद्ध है।

दुर्गा देवी

गाँव व तहसील : आनी।
मूल स्थान एवं भंडार : आनी।
मंदिर : सराजपाल (आनी)।
स्थापत्य : सीमेंट का नवनिर्मित मंदिर एक मंज़िल का है, जिसमें माँ दुर्गा की मूर्ति स्थापित है।



अधिकार क्षेत्र : आनी खंड की सात पंचायतें।
प्रबंध : प्रधान की अध्यक्षता में समिति।
न्याय प्रणाली : देवी के कारदार द्वारा।
पूजा : प्रातः-सायं प्रतिदिन शुद्ध घी का दीपक और गुग्गुल धूप जलाकर पूजा व आरती की जाती है।
रथ : नहीं है।
मोहरे : एक मूर्ति।
मेले-त्योहार : जून-जुलाई में दुर्गा माता का मुख्य मेला मनाया जाता है, जिसमें दस देवी-देवता सम्मिलित होते हैं, भाद्रपद मास में कृष्ण जन्माष्टमी महोत्सव मनाया जाता है, चैत्र और आश्विन में नवरात्र।
जनश्रुति : कुछ वर्ष पूर्व आनी तहसील के थबोली गाँव के ब्राह्मण कपूर चंद को स्वप्न में पच्छला देवी ने दर्शन देकर आनी में माँ दुर्गा की स्थापना का आदेश दिया। उसने गाँव के लोगों की सहायता से आनी के कार्टरोड में मंदिर बनवा कर उसमें देवी की मूर्ति स्थापित की। साथ ही एक पीपल का पेड़ लगाया, जिसके नीचे शिवलिंग स्थापित है।

द्रशौणी देवता

गाँव : डीम, तहसील : आनी।
मूल स्थान एवं मंदिर : डीम।
भंडार : गाँव छलाली।
शाखा मंदिर : चाकू देऊरा।
स्थापत्य : दो मंज़िल का यह मंदिर लगभग 130 वर्ष पुराना है। पत्थर व लकड़ी की चिनाई में यह काठकुणी शैली का मंदिर है। इसमें रंग-रोगन तथा बरामदे की लकड़ी में उत्कृष्ट नक्काशी की गई है। स्लेटों से आच्छादित इसकी छत पर कुरड़ लगा है, जिस पर कलश सुशोभित है। मंदिर के साथ सीमेंट का बना प्रांगण है, जिसके मध्य में देवता की 'थाणी' है, जहाँ देवता मेले के अवसर पर बैठता है। मंदिर का मुख्य द्वार पत्थरों से बना है, जो स्लेटों की छत से ढका है। प्रांगण के साथ मंदिर के दाहिनी ओर देवता भझारी की सराय है।
प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में समिति।
न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से, पर्ची या लड्डू डालकर।
पूजा : प्रातः-सायं लगभग 8 बजे धूप-दीप से।
रथ : चिड़ी शैली।
मोहरे : मुख्य मोहरा एक व अन्य सोलह।
मेले-त्योहार : श्रावण मास की संक्रांति को शौणचा मेला लगभग तीन-चार दिनों तक चलता है। अठारह प्रविष्टे को देवता अपने मंदिर से भझारी देवता के डीम देवरा में प्रवेश करता है, जहाँ लोग भझारी देवता के साथ मिट्टी के ढेलों से खेलते हैं। उसके बाद दोनों देवता गाँव में पहुँचते हैं और मेले का शुभारम्भ होता है।
जनश्रुति : द्रशौणी देव निरमंड के द्रोपा नामक स्थान से चलकर ब्रामगढ़, बशलेऊ गढ़ होता हुआ डीम गाँव के चीहूंई खल पर पहुँचा, जहाँ उसे भेड़ें चराता हुआ एक गडरिया मिला, जो पानी के लिए इधर-उधर भटक रहा था। देवता उसे प्रत्यक्ष दर्शन देकर घनी झाड़ियों के पास ले गया, जहाँ उसने अपनी शक्ति से जलस्रोत उत्पन्न किया। यह चमत्कार देखकर गडरिया एकदम समझ गया कि यह कोई दिव्य शक्ति है।

उसने पानी के पास ही डेरा डालकर उसे पूजना शुरू किया और देवता भी उसका रक्षक बनकर उसके साथ रहने लगा। कुछ समय बाद वह व्यक्ति जब अपने गाँव डीम वापिस आया तो उसने देवता के चमत्कार के सम्बंध में लोगों को बताया।

गाँववासियों ने भी देवता को मानना आरम्भ किया और कालांतर में डीम गाँव में मंदिर का निर्माण कर उसमें देवता की स्थापना की। उसके अलौकिक प्रभाव से आसपास के ग्रामीणों में भी देवता की मान्यता बढ़ी और आज चार गाँवों के लोग उसे पूजते हैं। गडरिए को प्रत्यक्ष दर्शन देने के कारण देवता 'द्रशौणी' के नाम से जाना जाता है।

नागणी माता

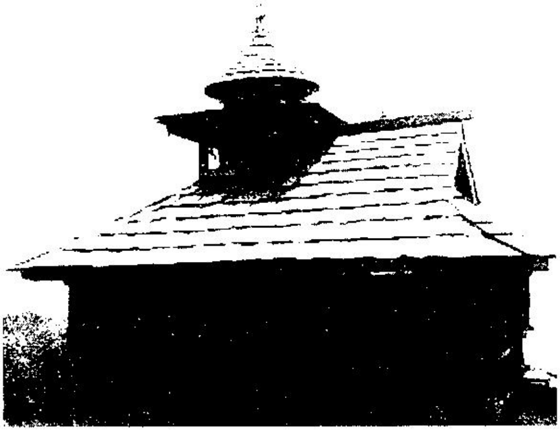
गाँव : रोपा, तहसील : आनी।
मूल स्थान : नागणी ज़ाण।
मंदिर एवं भंडार : रोपा।
स्थापत्य : पुराना मंदिर काष्ठ-प्रस्तर से पहाड़ी शैली में निर्मित था, लेकिन जीर्ण-शीर्ण होने के कारण पंचायत के निर्णयानुसार इसे लगभग आठ वर्ष पूर्व गिरा कर सीमेंट के प्रयोग सहित दो मंज़िल का नया मंदिर बनाया गया है, जिसकी छत चादरों की है। नीचे की मंज़िल में पानी की बावली है।



अधिकार क्षेत्र : समस्त रोपा पंचायत।
प्रबंध : पुजारी द्वारा।
न्याय प्रणाली : देवी स्वयं गूर में प्रवेश कर उसके माध्यम से न्याय करती है।
पूजा : प्रातः-सायं लोक विधि से।
रथ : नहीं है।
मोहरे : नहीं हैं। मंदिर में एक प्राचीन मूर्ति स्थापित है।
मेले-त्योहार : नवरात्रों में विशेष पूजा होती है।
जनश्रुति : रोपा गाँव का ग्वाला एक दिन पशुओं को चराने के लिए किसी नाले में ले गया। अचानक उसे एक आवाज़ सुनाई दी 'एछू' यानी आ जाऊँ। यह सुनकर वह भयभीत हुआ और भागते हुए घर पहुँचा। वहाँ उसने परिवारवालों को पूरी घटना सुनाई। उन्होंने कहा कि अगले दिन यदि उसे वही आवाज़ सुनाई दे तो निडर होकर कहना 'आ जा'। वैसा ही हुआ। दूसरे दिन ज्योंही ग्वाले तक वही आवाज़ आई, ग्वाले ने तुरंत कहा 'आ जा'। यह कहते ही उसके सामने एक ज़ान (चट्टान) से स्त्री प्रकट हुई जो नागिन थी। इससे यह स्थान नागणी ज़ान नाम से ख्यात हुआ। उस स्त्री ने ग्वाले को कहा कि वह उसे पीठ में उठा कर चल पड़े और पीछे मुड़ कर न देखे। ग्वाले ने पूछा कि वह उसे कहाँ ले जाए। तब स्त्री ने ज़मीन में चींटियों की पंक्ति दिखा कर कहा कि जहाँ यह पंक्ति समाप्त होगी वहीं उसे नीचे उतार देना। ग्वाला चींटियों की पंक्ति के साथ चलता रहा और उसे ऐसा लगा जैसे उसके पीछे बहुत-सी भेड़-बकरियाँ चल रही हैं। स्त्री के आदेशानुसार वह पीछे मुड़कर नहीं देख सकता था, लेकिन थोड़ी देर बाद उसके सब्र का बाँध टूट गया और उसने पीछे मुड़कर देख लिया। ऐसा करते ही वह स्त्री शिला में परिवर्तित हो गई। ग्वाले ने शिला पीठ पर उठाई और पुनः चींटियों की पंक्ति के साथ चलता रहा। गाँव रोपा में पहुँच कर जहाँ चींटियों की पंक्ति खत्म हुई, वहाँ ग्वाले ने शिला नीचे रख दी। थोड़ी देर बाद वहाँ पर धरती से पानी फूट पड़ा। लोगों ने वहाँ मंदिर का निर्माण कर पत्थर की वह शिला देवी रूप में स्थापित कर दी। तब से लेकर आज तक यह नागणी माता के नाम से जानी व पूजी जाती है।

नारायण देवता

गाँव : चौकी, तहसील : आनी।
मूल स्थान एवं मंदिर : चौकी।
भंडार : गाँव बाली।
स्थापत्य : स्लेटों से आच्छादित काष्ठ-प्रस्तर निर्मित दो सौ वर्ष पुराना, दो मंज़िल का मंदिर।
अधिकार क्षेत्र : समस्त खणी पंचायत।



न्याय प्रणाली : गूर द्वारा या पर्चियों के माध्यम से।
पूजा : दिन में एक बार प्रातः 8 बजे।
रथ : जुगा शैली।
मोहरे : कुल तीन मोहरे, जिनमें से एक मुख्य मोहरा है।
मेले-त्योहार : आषाढ़ मास के 21 प्रविष्टे को मेला शालणू , माघ मास के अंतिम दिन त्वार (त्योहार) मनाया जाता है।
अन्य सूचना : यह पशुओं की रोगों से रक्षा करने वाला देवता माना जाता है।
जनश्रुति : नारायण देवता की उत्पत्ति चौकी गाँव के एक ब्राह्मण के खेत में हल चलाते हुए भूमि से पिंडी रूप में हुई है। हलवाहे का हल जब बार-बार एक पत्थर में फँस रहा था तो उसने उस पत्थर को तोड़ दिया, लेकिन अगले दिन उसने देखा कि वह पत्थर पूर्ववत् खेत में पड़ा था। ब्राह्मण को यह देखकर कुछ शंका हुई। उसे लगा कि यह साधारण पत्थर नहीं हो सकता। कुछ दिनों बाद उस पत्थर पर करेड़ के पंडित की गाय को दूध की धार छोड़ते देखकर उसे और आश्चर्य हुआ। इस संशय को लेकर जब वह रात को सोया तो उसे स्वप्न में किसी देव-शक्ति के दर्शन हुए, जिसने बताया कि खेत में जो पत्थर है वह नारायण देवता की पिंडी है। दूसरे दिन पंडित ने वह पिंडी खेत से निकाली और वहीं छोटा-सा मंदिर बनाकर उसे स्थापित किया और उसकी पूजा-अर्चना आरंभ कर दी। काफी समय बाद उसने यह बात गाँव-वासियों को बताई। ब्राह्मणों ने प्रश्न डालकर पता लगाया कि वह नारायण देवता ही है। तब उन्होंने भी देवता की उपासना शुरू कर दी। देवता की कृपा से उनकी मन्नतें पूर्ण होने पर श्रद्धालुओं की संख्या बढ़ती गई और वह समस्त खणी पंचायत का अधिष्ठाता बन गया।

नारायण देवता

गाँव : फनौटी, तहसील : आनी।
मूल स्थान एवं मंदिर : फनौटी।
भंडार : गाँव बनाला।
स्थापत्य : काष्ठ निर्मित एक मंज़िल का प्राचीन मंदिर, जिसकी ढलवाँ छत स्लेटों से ढकी है। छत के ऊपर आधे भाग में कुरड़ स्थापित है तथा किनारे पर मेरु (पैगोडा) बनाया हुआ है। उसके ऊपर दो कलश शोभित हैं।
अधिकार क्षेत्र : गाँव फनौटी, जुहड़, बनाला, करशैई गाड़।
प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में समिति।
न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।
पूजा : प्रतिदिन धूप-दीप से।
रथ : चिड़ी शैली।
मोहरे : चार।
मेले-त्योहार : फाल्गुन मास की संक्रांति को गणेई, वैशाख संक्रांति को 'पलेच' लाई जाती है, जिसे मंदिर के प्रांगण में गाड़ा जाता है और दूसरे दिन 'जागरा' होता है, श्रावण मास के दूसरे प्रविष्टे को जागरा व सात प्रविष्टे को मेला लगता है। माघ मास की संक्रांति के दिन देवता की वाद्ययंत्रों के साथ पूजा की जाती है।
जनश्रुति : निचली फनौटी से मंगल नाम का एक दलित व्यक्ति अपनी गायों को चराने के लिए समीप के जंगल में ले जाया करता था। एक दिन उसने देखा कि उनमें से एक गाय अकस्मात् लुप्त हो गई और कुछ समय बाद पुनः अन्य गायों में सम्मिलित हो गई। उस दिन घर आकर उसने दूध नहीं दिया। उस व्यक्ति

को बड़ी चिंता हुई। जब ऐसा दो-तीन दिन तक होता रहा तो इसका पता लगाने के लिए उसने मोटे धागे का एक सिरा गाय के गले में बाँधकर उसका दूसरा सिरा स्वयं पकड़ लिया और उसके पीछे-पीछे चल पड़ा। चरते-चरते गाय एक स्थान पर पहुँच कर रुक गई और उसके स्तनों से दूध निकलने लगा। समीप आने पर उस व्यक्ति को एक पिंडी दिखाई दी। उसने उसे कोई पिशाच समझा जो उसकी गाय का दूध पी जाता था। वह उसे तोड़ने के लिए घन ले आया। वह पिंडी पर प्रहार करने ही वाला था कि वहाँ से गुज़र रहे जुहड़ गाँव के बुद्धू नामक ब्राह्मण ने उसे रोक कर पूछा कि वह क्या कर रहा है? तब उसने सारी घटना उस ब्राह्मण को सुनाई। गणना कर उस ब्राह्मण ने बताया कि पिंडी पिशाच की नहीं, नारायण देवता की है। वह इसे पूजेगा तो उसके सारे कार्य सिद्ध होंगे। तभी आकाशवाणी हुई कि यदि वह देवता की पूजा करेगा तो उसे अपनी कुछ भूमि दान करनी पड़ेगी। मंगल अपनी भूमि देवता को देने के लिए तैयार हो गया। उसने ब्राह्मण को देवता की पूजा करने के लिए कहा तो वह वर्ष में केवल बारह संक्रांतियों के दिन ही पूजा करने के लिए राज़ी हुआ। तब मंगल ने दूसरे ब्राह्मण को प्रतिदिन देवता की पूजा के लिए मना लिया और अपनी कुछ भूमि उसके नाम कर दी। जब देवता की ख्याति आसपास के गाँवों में फैली तो उन गाँवों के लोगों ने मिलकर मंदिर का निर्माण किया और मोहरे तथा रथ का निर्माण करवाया।

नारायण देवता

गाँव : बनास, तहसील : आनी।

मूल स्थान : बनास का शरोगी जंगल।

मंदिर एवं भंडार : बनास।

शाखा मंदिर : गाँव शरोगी।

स्थापत्य : दो मंज़िल के इस मंदिर का नवनिर्माण पाँच वर्ष पूर्व पुराने मंदिर की जगह हुआ है। काष्ठ व प्रस्तर निर्मित इस मंदिर की छत स्लेटों की है। मुख्य द्वार के सामने 'थाणी' (खुला स्थान) है। मेले के दौरान जब देवता बाहर निकलता है तो वहाँ बैठता है।



अधिकार क्षेत्र : गाँव बनास, लढागी, बुच्छैर, लफाली, तराला, रुमाली, खादवी, जाओं, शिलाआरन, नाली।

प्रबंध : प्रधान की अध्यक्षता में समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से तथा गोबर के लड्डू डालने की विधि से।

पूजा : प्रातः-सायं आठ बजे गुग्गुल धूप जलाकर।

रथ : चिड़ी शैली।

मोहरे : दो अष्ट धातु के, सात चाँदी के व सात पीतल के।

मेले-त्योहार : वैशाख मास की संक्रांति को कवाईथाच में वैशाखी मेला, फाल्गुन के चार प्रविष्टे को देवता का उत्पत्ति दिवस मनाया जाता है।

जनश्रुति : एक बार नारायण गढ़ के कुछ व्यक्ति नमक लेने के लिए मंडी के द्रंग क्षेत्र में गए। लौटते हुए मार्ग में रखाईधार पर वे विश्राम करने के लिए रुके। उन्हें प्यास लगी तो वे इधर-उधर पानी की खोज करने लगे। परन्तु उन्हें कहीं भी पानी नहीं मिला। उसी समय उनमें से एक व्यक्ति को देव-खेल आई और उसने कहा, 'मैं नारायण देव हूँ और तुम्हारे साथ द्रंग से आया हूँ। तुम परेशान मत हो, मैं यहीं तुम्हें जल उपलब्ध करवाऊँगा।' ऐसा कहते ही वहाँ पानी का एक स्रोत फूट पड़ा, जिसे देखकर उन लोगों को अहसास हुआ कि वास्तव में उनके साथ कोई चमत्कारी देवता आया है। पानी का जो स्रोत देवता ने उत्पन्न किया था, वह आज भी वहाँ 'नारायण पाणी' के नाम से जाना जाता है। गाँव पहुँच

कर उन लोगों ने नारायणगढ़ वासियों को इस घटना के सम्बंध में बताया। उन्होंने देवता की स्थापना के लिए नारायणगढ़ की चोटी को चुना, परन्तु देवता को वह स्थान पसंद नहीं आया। अतः लोगों ने देवता के लिए कवाईथाच के समीप शरोगी गाँव में मंदिर का निर्माण किया। शरोगी में आकर देवता लोगों की इच्छाओं को पूरा करने लगा तो सम्पूर्ण क्षेत्र में इसकी मान्यता बढ़ी। तब बनास गाँव में भी देवता के निमित्त एक मंदिर का निर्माण किया गया।

पच्छला देवी

गाँव : देहुरी, तहसील : आनी।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : देहुरी।

शाखा मंदिर : कशटा, रूना, छलैमा, थरोग।

स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर निर्मित अति प्राचीन मंदिर जिसकी दीवारों पर टाँकरी व शारदा लिपि के आलेख हैं। इसके अतिरिक्त राजा रणजीत सिंह तथा राजा रघुवीर सिंह के शिकार-प्रेमी होने के प्रमाण रूप में कई पशु-पक्षियों के चिह्न भी यहाँ स्थापित हैं।

अधिकार क्षेत्र : गाँव तलूना, आनी, जावन, नम्होग, बखनाओ, बिंगुल।

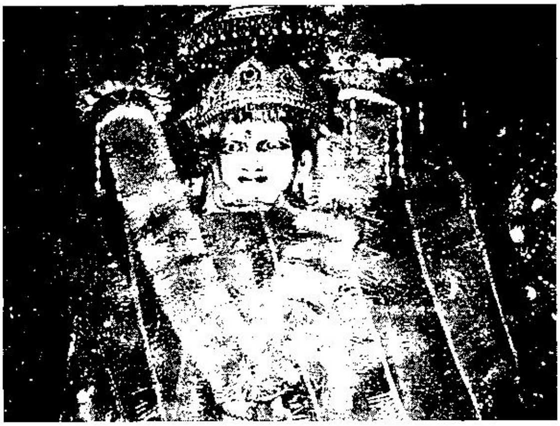
प्रबंध : प्रधान की अध्यक्षता में समिति।

पूजा : प्रातः-सायं पारम्परिक विधि से।

रथ : नहीं है। केवल त्रिशूल है।

मोहरे : एक मुख्य तथा सात अन्य मोहरे।

मेले-त्योहार : देवी का विशेष मेला गाँव कशटा में हर वर्ष 9 से 11 कार्तिक तक मनाया जाता है। पच्छला माता पहले दिन क्षेत्र के सैकड़ों लोगों के साथ मेले में सम्मिलित होती है। सारा दिन गाँव के छोटे मंदिर में रहती है। अगले दिन प्रातः ढोल-नगाड़ों की ताल के साथ गाँव के मध्य लाई जाती है और देवी के सभी वाद्य बजाए जाते हैं। इसमें केवल महिलाएँ पारंपरिक वस्त्राभूषण पहनकर ढाई फेरे नाटी नाचती हैं और धुरी पर गूर नाचता है। बजंत्री कशटा गाँव के तीस घरों के प्रांगण में



जा कर देवी का गुणगान करते हैं और लोग उन्हें अन्न-धन देते हैं।

जनश्रुति : किसी समय देहुरी गाँव के दलित वर्ग के एक व्यक्ति को खेत में काम करते हुए धरती से एक प्रतिमा मिली। उसने इसके विषय में गाँववालों को बताया। सभी दुविधा में पड़ गए कि प्रतिमा की स्थापना कहाँ की जाए। तब गमा नाम के ज्योतिषी को देवी ने स्वप्न में दर्शन देकर बताया कि यह प्रतिमा दुर्गा माता की है, इसकी स्थापना 'पच्छला माता' के नाम से देहुरी गाँव में मंदिर का निर्माण करके की जाए। तब लोगों ने कशटा गाँव के लोगों की सहायता से मंदिर का निर्माण कर प्रतिमा की स्थापना की।

पटारनी नाग

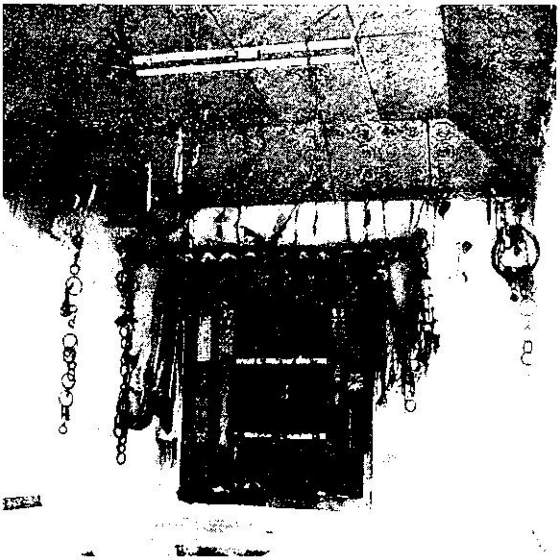
गाँव : पटारना, तहसील : आनी।

मूल स्थान एवं मंदिर : गाँव निचला पटारना।

भंडार : गाँव नाली।

शाखा मंदिर : एक अतिरिक्त मंदिर पटारना में ही है।

स्थापत्य : पुराने मंदिर के जीर्ण-शीर्ण अवस्था में होने के कारण दो वर्ष पूर्व स्थानीय लोगों ने यहाँ तीन मंज़िल के एक भव्य मंदिर का निर्माण किया है, जो लकड़ी-पत्थर से पहाड़ी शैली में निर्मित है। इसकी ढलवाँ छत स्लेटों की है।



देवता तीसरी मंज़िल में स्थापित है। मंदिर के काष्ठ द्वारों आदि पर सुंदर नक्काशी की गई है। मंदिर के बाहर काली की प्रस्तर प्रतिमा स्थापित है।

अधिकार क्षेत्र : गाँव पिछला पटारना, निचला पटारना, मिश्ता, बागी दोघरी तथा लामीधार।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में प्रबंध समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।

पूजा : प्रातः जल से स्नान करवा कर कुंकुम, फूल, अक्षत धूप-दीप से।

रथ : काष्ठ निर्मित खड़ा रथ।

मोहरे : मुख्य मोहरे सहित आठ।

मेले-त्योहार : वैशाख संक्रांति को जागरा तथा मार्गशीर्ष मास में बूढ़ी दीवाली।

जनश्रुति : पटारनी नाग को सरेउलसर की बूढ़ी नागिन का पुत्र माना जाता है। यह नाग शाई, पनेऊ से झाकड़ होते हुए पटारना के पर्वत नामक स्थान पर आया, जहाँ माँ काली का निवास था। वहाँ स्थान प्राप्त करने के लिए उसने काली के साथ युद्ध किया और उसे हराया। इससे प्रसन्न होकर देवी ने उसे वहाँ स्थान दे दिया। इसके बाद वह एक गुफ ा से होता हुआ पटारना गाँव के समीप निकला और उसने देखा कि वहाँ 'मरेछ' रहते हैं। नाग भी वेश बदलकर उनसे घुलने-मिलने लगा। एक दिन जब वह उनके साथ नृत्य कर रहा था तो उन्हें पता चल गया कि यह कोई नाग है और उन्होंने उसे मारना चाहा, परन्तु नाग एक गुफ ा के माध्यम से पटारना के निचले गाँव पहुँच गया। काफी समय के बाद जब मरेछों का अन्त हुआ तो देवता का वर्चस्व स्थापित हुआ। पटारना गाँव में स्थापित होने के कारण वह पटारनी नाग कहलाया।

पनेउई नाग

गाँव : पनेऊ, तहसील : आनी।

मूल स्थान : पनेऊ। **मंदिर :** पनेऊ जंगल के मध्य गाँव बागी के साथ स्थित है।

शाखा मंदिर : गाँव कुंगश।

स्थापत्य : पनेउई नाग का देशज शैली का पुराना मंदिर जीर्ण-शीर्ण अवस्था में होने के कारण सन् 2010 में इस मंदिर की चार-दीवारी और छत का जीर्णोद्धार किया गया है। एक मंज़िल के इस मंदिर की ढलानदार छत पहले काष्ठ से आच्छादित थी। सुरक्षा की दृष्टि से अब उस पर टीन की चादर लगा दी गई है। मंदिर के समतल प्रांगण के चारों ओर देवदार का घना जंगल है।

अधिकार क्षेत्र : गाँव संपल, बाई, बागी, रिश्ता, धार, कुटल, शोधा, बाला, जैहरा, शलाल।



प्रबंध : प्रधान की अध्यक्षता में समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।

पूजा : कुंगश मंदिर में प्रतिदिन प्रातः धूप-दीप, फूल, अक्षत, कुंकुम से पूजा व सायं आरती होती है। पनेऊ मंदिर में प्रत्येक संक्रांति को पंचोपचारपूर्वक पूजा होती है।

रथ : खड़ी शैली।

मोहरे : छह।

मेले-त्योहार : चैत्र नवरात्र, देव 'त्यार' तथा श्रावण, आश्विन व फाल्गुन संक्रांति को विशेष पूजा।

जनश्रुति : किसी समय कुंगश गाँव के शाई नामक स्थान पर तीन नाग रहते थे। एक बार उन तीनों में पनेऊ गाँव जाने के लिए संवाद हुआ। अंत में उन्होंने यह निर्णय लिया कि तीनों ब्राह्ममुहूर्त में भूमि के नीचे से होते हुए शाई से पनेऊ को जाएँगे और जो सबसे पहले वहाँ पहुँचेगा वही वहाँ का अधिष्ठाता माना जाएगा। उनमें से शंकपाल नाम का नाग अत्यंत चतुर था। अन्य दो नाग तो भूमि के भीतर से होते हुए पनेऊ की ओर चले, जबकि शंकपाल ने कुछ रास्ता भूमि के अन्दर से तो कुछ ऊपर से तय किया और सबसे पहले पनेऊ पहुँच कर शंखनाद कर दिया। शंख ध्वनि सुनकर दोनों नागों को पता चल गया कि शंकपाल वहाँ पहुँच गया है। अतः उन्होंने अपना रास्ता बदल लिया और शंकपाल पनेउई नाग के नाम से वहाँ प्रसिद्ध हुआ।

बशावली नारायण

गाँव : पकरेड़, तहसील : आनी।

मूल स्थान : पकरेड़।

मंदिर एवं भंडार : गाँव बशावला।

स्थापत्य : तीन सौ वर्ष पुराने मंदिर का लगभग छह वर्ष पूर्व जीर्णोद्धार किया गया है। पहाड़ी शैली में निर्मित इस मंदिर की तीन मंज़िलें हैं, छत स्लेटों से आच्छादित है। बशावल में ही दो वर्ष पूर्व एक 'देवरे' का निर्माण किया गया है।

अधिकार क्षेत्र : सम्पूर्ण मुहान पंचायत।

प्रबंध : प्रधान की अध्यक्षता में समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।

पूजा : प्रातः-सायं पंचोपचारपूर्वक।

रथ : जुगा शैली।

मोहरे : तेरह।

मेले-त्योहार : आश्विन संक्रांति को गाँव पकरेड़ में एक दिवसीय मेला लगता है, वैशाख संक्रांति को बशावल जागरा, 2 से 4 वैशाख तक चंदोखरी मेला।

जनश्रुति : देवता की उत्पत्ति एक तालाब से हुई बताई जाती है। मान्यता है कि पकरेड़ गाँव में कुम्हार जाति का एक परिवार रहता था। एक दिन कुम्हार की पत्नी तालाब से पानी लाने गई। ज्यों ही वह पानी भरने लगी, उसे आवाज़ सुनाई दी कि मुझे बाहर निकालो। यह आवाज़ उसे थोड़ी-थोड़ी देर के बाद सुनाई देने लगी, लेकिन उसे आस-पास कोई भी दिखाई नहीं दिया। तब उसने घर पहुँचकर यह सारा वृत्तांत अपने पति को सुनाया। जानने की इच्छा से वे दोनों पुनः तालाब के पास आए। कुछ पल बाद उन्हें वही आवाज़ सुनाई दी और लक्ष्मी-नारायण की प्रतिमा पानी में तैरती हुई दिखाई दी। कुम्हार ने प्रतिमा बाहर निकाली और वे इसे अपने घर ले आए। शाम को जब कुम्हार के घर पर आकाशवाणी हुई कि प्रतिमा की स्थापना बशावली में मंदिर बना कर की जाए, तब कुम्हार ने मंडी ज़िला के छलाई गाँव से जमाल नाम के मियां को पूजा के लिए बुलाया और लोगों ने बशावली में मंदिर का निर्माण किया।

बाड़ी दुर्गा

गाँव : बाड़ी, तहसील : आनी।

मूल स्थान, मंदिर : बाड़ी।

भंडार : गाँव चखाणा।

शाखा मंदिर : चखाणा, तिहणी, शेऊल।

स्थापत्य : स्लेट की छत वाला काठकुणी शैली में निर्मित मंदिर है। एक मंज़िल के इस मंदिर के काष्ठ पर सुंदर



नक्काशी की गई है। गर्भगृह में देवी की प्रस्तर प्रतिमा है और बाहर के कक्ष में हवन कुंड व श्रद्धालुओं के बैठने का स्थान है।

अधिकार क्षेत्र : गाँव च्वासीगढ़ व सिरीगढ़।

प्रबंध : प्रधान की अध्यक्षता में समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से तथा देवता के सम्मुख गोबर के लड्डू डालकर।

पूजा : गुग्गुल धूप जलाकर घंटा-ध्वनि के साथ।

रथ : जुगा शैली।

मोहरे : तीन।

मेले-त्योहार : 8 वैशाख को बाड़ी ठिरशू मेला जो देवी के मंदिर के प्रांगण में लगता है। देवी का सुसज्जित रथ बजंत्रियों, कारकुनों और देउलुओं के साथ भंडार स्थल चखाणा से मेला स्थान पर आता है, जहाँ पूजा-अर्चना के बाद गूर को खेल आती है और देवी उसके माध्यम से अपनी प्रजा के प्रश्नों के उत्तर देती है। बाड़ी दुर्गा के भाई बैहना देवता भी छड़ी रूप में मेले में पधारते हैं और दोनों के गूरों का मिलन होता है। भादों मास की कृष्ण जन्माष्टमी के दिन देवी के भंडार स्थल चखाणा में रवैंश मेला मनाया जाता है। देवी को रथ पर सुसज्जित कर भंडार से बाहर पाटली (आँगन) में बैठाया जाता है। ब्राह्मण बहुल गाँवों की महिलाएँ पारम्परिक वेशभूषा में सज-धज कर देवी दुर्गा के सम्मुख घरों से लाई गेहूँ और चावल की मोड़ी, सेब, खीरे तथा अखरोट व गुट्टी इत्यादि चढ़ाती हैं और ब्राह्मणों द्वारा जरमाटली (कृष्णभक्ति) गीत गाए जाते हैं, 15 ज्येष्ठ को जागरा होता है, मार्गशीर्ष मास में चखाणा में 'बूढ़ी दीवाली' का आयोजन होता, 10 आषाढ़ को मैहच जात्रा में देवी का रथ अपने कारकूनों व देवलुओं सहित वाद्ययंत्रों की धुन के साथ मैहच गाँव में पहुँचता है और गूर में देव-शक्ति के प्रवेश के साथ मेले का शुभारम्भ होता है।

जनश्रुति : सदियों पूर्व माता की मूर्ति गाँव तिहणी के तुरली खानदान के कश्यप गोत्रीय एक व्यक्ति को अपने खेत बखनाली में हल जोतते समय मिली थी। उसी समय आकाशवाणी हुई कि नदी के किनारे स्थित बाड़ी नामक स्थान में मंदिर का निर्माण कर मूर्ति को स्थापित किया जाए। तब उस व्यक्ति ने निकट के गाँव तुमण के ब्राह्मणों से इस बारे में बातचीत की। उन्होंने शाई गाँव के शिल्पियों से बाड़ी में काठकुणी शैली में मंदिर का निर्माण करवाया और मूर्ति को गर्भगृह में स्थापित कर प्राण-प्रतिष्ठा करवाई। तब से लेकर आज तक इस देवी का यश दूर-दूर तक फैला है। तुरली खानदान के वंशज आज भी तिहणी गाँव में हैं। किसी समय देवी बाड़ी दुर्गा पर एक राक्षस ने कुदृष्टि डाली। तब देवी ने विराट रूप धारण कर राक्षस का पीछा किया और क्रोध में आकर देवदार के विशाल वृक्ष को जड़ से उखाड़ कर उस राक्षस पर फेंका, जिसकी चोट से राक्षस मर गया। उस पेड़ का शिखर आज भी शेऊल गाँव में ज़मीन में धंसा देखा जा सकता है और इसका मूल आसमान की ओर उल्टा खड़ा है। इस पेड़ के पास माता का मंदिर बनाया गया है।

बिननी महादेव

गाँव : बिनन, तहसील : आनी।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : बिनन।

स्थापत्य : पैगोडा संयोजन शैली में निर्मित मंदिर है।

अधिकार क्षेत्र : गाँव बिनन से शुरलाधार तक, दोगरी, मालगी, करंथल, शेहुल, मुंडदढ़, चिमनी, कांडी, घुमउई, कटाहर, चैहली, कुन, मेईनाल, जेंडा।

प्रबंध : समिति द्वारा।



न्याय प्रणाली : देवता द्वारा गूर के माध्यम से।

पूजा : पारम्परिक विधि से दोनों समय।

रथ : खड़ा रथ।

मोहरे : ग्यारह।

मेले-त्योहार : चौदह वैशाख को मुंडदढ़ का मेला, वीस श्रावण को बिनन की शौणचा जाच, कार्तिक मास में दीपावली पर्व।

जनश्रुति : बहुत समय पहले सारदू नाम का व्यक्ति विनन गाँव की जनार बावड़ी के समीप अपने खेत में हल चला रहा था, तभी उसका फाल धातु की वस्तु से टकराया और ज़ोर की आवाज़ हुई। आवाज़ सुनकर बैल रुक गए तो सारदू ने देखा कि एक मोहरा उसके हल की चपेट में आ गया है, जिससे मोहरे पर हल्का-सा निशान पड़ गया है। वह उसे उठा कर लोगों के पास ले गया। उनकी समझ में न आया कि यह किस देवता का मोहरा है और कहाँ इसकी स्थापना की जाए। उसी रात किसी व्यक्ति को स्वप्न में देवता ने कहा, 'जहाँ से मूर्ति प्राप्त हुई है, उस स्थान पर जाओ। वहाँ से आ रही चींटियों की कतार जिस स्थान पर जाकर रुक जाएगी, वहीं तुम मेरा स्थान बनाना।' दूसरे दिन सभी लोगों को उसने अपना स्वप्न सुनाया और उन्होंने मोहरे के प्राप्ति स्थान पर जाकर देखा कि वास्तव में वहाँ से बहुत सी चींटियाँ पंक्तिबद्ध हो एक निश्चित दिशा की ओर जा रही थीं। वे भी उनके पीछे-पीछे चल पड़े और जहाँ चींटियाँ रुकीं, वहीं देवता के निर्देशानुसार मंदिर बना कर मूर्ति की स्थापना की गई। ऐसा माना जाता है कि इस घटना से हज़ारों वर्ष पूर्व बिननी महादेव का मंदिर बिनन गाँव से करीब दो किलोमीटर की दूरी पर स्थित था, जो भूस्खलन के कारण मूर्तियों सहित भूमि के नीचे दब गया था और वही मूर्ति सारदू के खेत में निकली थी जो आज बिनन में स्थापित है।

बूढ़ी नागिन

गाँव : कनाला, तहसील : आनी।

मूल स्थान : सरेउलसर (चित्र)।

मंदिर एवं भंडार : कनाला।



स्थापत्य : दो मंज़िल का नया मंदिर पुरानी जगह पर बन रहा है। दीवारों की चिनाई पत्थर व लकड़ी से की गई है। छत पर स्लेटें डाली गई हैं। मंदिर अभी पूर्ण रूप से तैयार नहीं हुआ है।

अधिकार क्षेत्र : बाह्य सराज के सभी गाँव।

प्रबंध : प्रधान की अध्यक्षता में गठित समिति।

न्याय प्रणाली : गूर व समिति द्वारा।

पूजा : सुबह-शाम धूप-दीप सहित भोग लगाकर।

रथ : नहीं है।

मोहरे : एक मुख्य व नौ अन्य, कुल दस।

मेले-त्योहार : वर्ष की सभी संक्रांतियों को विशेष पूजा।

जनश्रुति : बूढ़ी नागिन सुवर्णदेव बिष्ट की कन्या थी जो सुग्गा-सरपारा सरोवर के पास भेड़-बकरियाँ चराने आती थी। एक दिन उसे सरोवर किनारे एक विचित्र फूल दिखाई दिया, जिसे तोड़कर उसने अपनी गाची में छिपा लिया। उसके बाद उसे नौ अन्य फूल दिखे। उसने आठ फूलों को तोड़ लिया पर नौवें को तोड़ते समय भ्रमर के रूप में जल देवता उसके इर्द-गिर्द उड़ने लगा। उससे डरकर कन्या तालाब में गिर गई। जल देवता उसे अपने साथ ले गया और बहुत दिनों तक अपने पास रखा। जब वह अपने घर लौटी तो उसने नागों के रूप में नौ बच्चों को जन्म दिया। वह उन्हें छिपाकर उनका पालन-पोषण करने लगी। एक दिन वह कहीं बाहर गई हुई थी कि उसकी माँ ने उन बच्चों को देख लिया और उन्हें नष्ट करने के बारे में सोचने लगी, लेकिन तब तक वे वहाँ से भाग चुके थे। बूढ़ी नागिन जब वापिस आई तो बच्चों को न पाकर वहाँ से चल दी और कान्वा छोह नामक स्थान पर पहुँचकर बूढ़ी नागिन के नाम से रहने लगी। वहाँ अपनी शक्ति से उसने ढाई पल में सरेउलसर तैयार किया। ऊंदो नामक तांत्रिक ने जब उसे सुखाना चाहा तो नागिन ने अपने आग्नेय नेत्रों से उस पर दृष्टि डालकर उसे मार दिया। अपनी शक्ति से बूढ़ी नागिन ने निरमंड के ब्रामगढ़ से लेकर वंजार देउरी तक अपना प्रभाव जमाया है। इस सारे क्षेत्र में लोग आज भी उसे बूढ़ी नागिन के रूप में मानते-पूजते हैं।

बैहनी महादेव

गाँव : बैहना, तहसील : आनी।

मूल स्थान, मंदिर व भंडार : बैहना।

शाखा मंदिर : माहुली, कोट, फिरनू व हनुमान घाट।

स्थापत्य : पैगोडा संयोजन शैली में बना प्राचीन मंदिर स्लेटों से आच्छादित है। गर्भगृह में पाषाण की पिंडी स्थापित है और बाहर के कक्ष में हवन कुंड बना है।



परिसर में कई सुन्दर प्रस्तर प्रतिमाएँ व तराशे गए स्तम्भ विद्यमान हैं।

अधिकार क्षेत्र : ज़िला शिमला का माहुली क्षेत्र, ज़िला मंडी का फिरनू तथा ज़िला कुल्लू की बैहना पंचायत।

प्रबंध : प्रधान की अध्यक्षता में समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से, गोबर के लड्डू डालकर।

पूजा : प्रतिदिन दोनों समय स्थानीय जड़ी-धूप जलाकर व शिवलिंग पर बिल्व पत्र चढ़ाकर। परन्तु विशेष पर्वों पर देवता की पूजा के समय वाद्य यंत्र बजाए जाते हैं और तेल का दीपक जलाया जाता है।

रथ : जुगा शैली।

मोहरे : एक मुख्य तथा बारह अन्य।

मेले-त्योहार : वैशाख व आषाढ़ संक्रांति को माहुली गाँव में शालणू मेला लगता है, 22 श्रावण को शौणचा मेला तथा मार्गशीर्ष अमावस को बूढ़ी दीवाली। इन सभी मेलों में देवता का रथ 'सौह' में निकलता है और लोग पारंपरिक वाद्ययंत्रों की धुनों पर नृत्य करते हैं।

जनश्रुति : किसी समय बैहना गाँव में 'मुआणे' रहा करते थे। उन्होंने अपने मवेशियों को चराने के लिए एक गूँगा ग्वाला रखा हुआ था। वह प्रतिदिन गौओं को सतलुज किनारे चराने के लिए ले जाया करता था। उनमें से एक गाय सतलुज पार माहुली नामक स्थान में चरने जाती थी। शाम को गाय जब घर वापिस लौटती तो केवल दो थनों में से दूध निकलता और शेष दो थन

बिल्कुल खाली होते। एक-दो दिन 'मुआणों' ने सोचा कि ग्वाला इसका दूध पी जाता होगा। लेकिन जब कई दिनों तक लगातार ऐसा होता रहा तो उन्होंने ग्वाले से इस बारे पूछताछ की।

ग्वाला भी इस बारे में अनभिज्ञ था। तब मुआणों ने ग्वाले को गाय की पूँछ से बाँध दिया। जब गाय चरने के लिए सतलुज पार गई तो गूँगे ग्वाले ने देखा कि एक साँप गाय के थनों से दूध पी रहा था। उसने यह सारी घटना अपने मालिकों को इशारे से बता दी। अगली प्रातः मुआणों ने खुद यह दृश्य देखा। मुआणों ने जब साँप को मारना चाहा तो वह लुप्त हो गया। उन्होंने साँप को ढूँढने के लिए खेत को खोदना शुरू किया। उन्हें वहाँ मिट्टी का एक शिवलिंग मिला। उसे निकालकर पुनः खोदना शुरू किया तो उन्हें एक मोहरा दिखाई दिया जो देव शक्ति से चमकने लगा। मुआणों ने इसे भगवान शंकर का रूप जाना और उन्होंने गाँव में मंदिर का निर्माण करवा कर शिवलिंग और मोहरे को स्थापित करने की योजना बनाई, लेकिन वहाँ शुक्र और शनि देवता का स्थान होने के कारण वे दुविधा में पड़ गए और इसका उपाय स्वयं ढूँढने के लिए महादेव से प्रार्थना की।

अगली प्रातः शुक्र व शनि देव जब स्नान के लिए सतलुज में गए तो महादेव ने गाँव की पूरी सीमा को चींटियों के घेरे से बाँध दिया। शुक्र और शनि देव जब स्नान के बाद गाँव की ओर जाने लगे तो काफी प्रयास के बाद भी वे चींटियों के घेरे को लाँघने में विफल रहे और उन्हें वह स्थान छोड़ना पड़ा। मुआणों ने तब गाँव में मंदिर का निर्माण करवा कर उस एक शिवलिंग और मोहरे की वहाँ स्थापना की।

तब से लेकर अब तक लोगों में महादेव के प्रति आस्था बनी हुई है। किसी आदमी के पैरों में यदि कीलें हो जाएँ तो इस मंदिर की दहलीज पर लगी शहतीर पर कील गाड़ कर उनसे छुटकारा मिल जाता है।

भझारी देवता

गाँव : कोट, तहसील : आनी।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : कोट।

शाखा मंदिर : गाँव कनाला व डीम।

स्थापत्य : तीन मंज़िल का यह मंदिर 15 वर्ष पूर्व बना है। काष्ठ-पत्थर से निर्मित मंदिर की लिपाई गारे से की गई है। स्लेटों से ढकी छत पर कुरड़ है, जिस पर कलश सुशोभित हैं। मंदिर का द्वार पूर्व की ओर है। इसका प्रांगण काफी खुला है, जिस पर पत्थर के चक्के बिछे हुए हैं।

अधिकार क्षेत्र : गाँव खणाग, लझेरी, खणी, कमांद पंचायतें।

प्रबंध : प्रधान की अध्यक्षता में समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।

पूजा : प्रातः-सायं 8 बजे।

रथ : जुगा शैली।

मोहरे : एक मुख्य मोहरा, तेरह अन्य।

मेले-त्योहार : कोट गाँव में ठिरशू और बूढ़ी दीवाली तथा जाओं व डीम गाँवों में शौणचा मेले होते हैं।

जनश्रुति : देवता भझारी को शेष नाग माना गया है। इसकी उत्पत्ति कोट के खिंद्रवाई नामक स्थान में हुई बताते हैं। एक किसान जब खेत में हल चला रहा था तो एक मुखौटा उसके हल के फाल में फँस कर भूमि से बाहर निकल आया।

उसी समय आकाशवाणी हुई कि यह भझारी देवता है और इसकी स्थापना कोट गाँव में की जाए। किसान ने यह घटना गाँव वासियों को सुनाई। लोगों ने मंदिर का निर्माण कर मुखौटे को वहाँ स्थापित करके इसकी पूजा आरम्भ की। देव-शक्ति से लोगों की इच्छाओं की पूर्ति होने लगी, जिससे श्रद्धालुओं की संख्या बढ़ती गई और कनाला व डीम गाँव में भी भझारी देवता के मंदिरों का निर्माण किया गया।

भैरो देवता

गाँव : चौका, तहसील : आनी।

मूल स्थान एवं भंडार : चौका।

मंदिर : नहीं है। चौका गाँव के श्री आंबी चंद के घर के अंदर ही देवता की स्थापना है।

अधिकार क्षेत्र : गाँव चौका, खणिया, टिप्पर बाग, मनछानी, निन्थी, मयून, कुंगश, कांडा आदि।

न्याय प्रणाली : कारदार के माध्यम से।

पूजा : प्रातः-सायं धूप-दीप से।

मोहरे : एक मुख्य मोहरा तथा आठ अन्य।

जनश्रुति : भैरो को काली माता का सेवक माना जाता है। कहीं-कहीं यह वीर देवता के रूप में भी पूजा जाता है। इसे वीरों में सबसे भयानक माना जाता है। गूर, भाट, चेले कार्य सिद्धि के लिए मंत्रों के माध्यम से इसका आह्वान करते हैं।

मुरलीधर

गाँव : बटाला, तहसील : आनी।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : बटाला।

स्थापत्य : एक मंज़िल व चार कमरे का यह मंदिर पत्थर के चबूतरे पर बना है। पत्थर व लकड़ी से बने मंदिर की छत स्लेटों से छाई गई है। ढलवाँ छत के मध्य भाग में कुरड़ लगा है, जिस पर कलश शोभायमान हैं। खुले मंदिर परिसर में पत्थर के चक्के बिछे हैं।

अधिकार क्षेत्र : समस्त खणी पंचायत।

प्रबंध : प्रधान की अध्यक्षता में समिति।

न्याय प्रणाली : देवता के गूर द्वारा लड्डू की विधि से।

पूजा : दिन में चार बार, प्रातः छह बजे, नौ बजे तथा सायं छह बजे और रात्रि नौ बजे। अंतिम पूजा के समय भजन-कीर्तन भी होता है।

रथ : नहीं है। मंदिर में प्रतिमा स्थापित है।

मेले-त्योहार : होली और जन्माष्टमी।



जनश्रुति : बुज ुर्गों का कहना है कि प्राचीन समय में रामपुर बुशहर के शिंगला गाँव का बंदू नामक व्यक्ति अपने साथ नृसिंह की प्रतिमा ले कर बटाला में बसने आया था और उसने यहाँ मंदिर का निर्माण कर प्रतिमा को प्रतिष्ठित किया। काफी वर्षों बाद जब मंदिर का जीर्णोद्धार किया गया तो इसमें मुरलीधर की मूर्ति शास्त्रोक्त विधि से स्थापित की गई। तब से यह मुरलीधर के नाम से ही प्रख्यात हुआ।

राई थाची

गाँव : कोट, तहसील : आनी।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : कोट।

स्थापत्य : एक मंज़िल का यह मंदिर काष्ठ-प्रस्तर निर्मित काठकुणी शैली का है। ढलानदार छत स्लेटों की है।

अधिकार क्षेत्र : करशैई गाड़ पंचायत।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में समिति।

न्याय प्रणाली : गूर द्वारा तथा लड्डू डाल कर।

पूजा पद्धति : प्रातः-सायं पंचोपचार विधि से।

रथ : चिड़ी शैली।

मोहरे : एक मुख्य तथा छह अन्य।

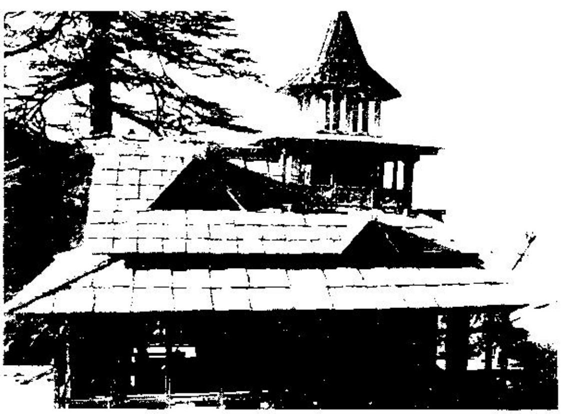
मेले-त्योहार : 17 आषाढ़ को कोट में एक दिवसीय मेला।

जनश्रुति : जौल़ गाँव में 'माण-मरेछों' का आधिपत्य था। वे देवता राई थाची को तो मानते थे, लेकिन खुडीजल देवता को नहीं मानते थे। इससे क्रोधित होकर खुडीजल ने

'माण-मरेछों' का राई थाची देवता सहित विनाश कर दिया। भूस्खलन से पूरा गाँव और राई थाची देवता भूमि में दब गया। कालांतर में यह देवता कोट गाँव में उत्पन्न हुआ और अपने चमत्कार दिखा कर पूरी करशैई गाड़ पंचायत के लोगों का मान्य देवता बना।

लक्ष्मी नारायण

गाँव : करशाला, तहसील : आनी।
मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : करशाला।
शाखा मंदिर : शुश, लवरूट।
स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर निर्मित पहाड़ी शैली का एक मंज़िल का मंदिर, जिस पर दो छतें हैं। निचली छत चारों ओर को ढलानदार है तथा ऊपरी छत दो तरफ को ढलान लिए है। इसके शिखर पर एक ओर कुरड़ लगा है तथा एक ओर मेरु (पैगोडा) बनाया हुआ है।



अधिकार क्षेत्र : फाटी करशैईगाड़, विशलाधार, कराड़।
प्रबंध : प्रधान की अध्यक्षता में समिति।
न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से, लड्डू डालकर, कारी (खड़ी पूछ से)।
पूजा : प्रातः-सायं पंचोपचार विधि से।
रथ : चिड़ी शैली,
मोहरे : तेरह।
मेले-त्योहार : वैशाख तथा श्रावण मास के प्रथम प्रविष्टे को जागरे का आयोजन होता है, आश्विन मास की संक्रांति को प्रजाजन प्रातः मंदिर में इकट्ठे होकर देवता का हार-शृंगार करते हैं और रथ को मंदिर के प्रांगण में चारों ओर नचाते हैं। शाम को छह बजे देवता कशागी गाँव जाता है, कार्तिक मास में दीपावली के दिन देवता को सजाकर मंदिर से गाँव बोथल लाया जाता है। वहाँ मशाल और घी को जलाकर दीपावली का शुभारम्भ किया जाता है, फाल्गुन मास की संक्रांति को देवता की जयंती के रूप में मनाया जाता है।
जनश्रुति : गाँव करशाला के पजाल नामक स्थान में ठाकर नाम का व्यक्ति रहता था। वह प्रतिदिन अपनी गायों को चराने के लिए नज़दीक के जंगल कलौण में ले जाया करता था। एक बार उसकी गाय ने शाम को दूध देना बंद कर दिया। उसे संशय हुआ और वह गाय का पीछा करता रहा। जब गाय के घर वापिस लौटने का समय आया तो वह देवदार के पेड़ के नीचे जाकर एक पत्थर पर अपने थन से दूध की धार छोड़ने लगी। ठाकर को यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। वह एक घन (मारतोड़) लाया और पत्थर को तोड़ना शुरू किया। अचानक घन उछल कर उसके माथे पर लग गया और उसकी वहीं मृत्यु हो गई। ठाकर के घर न लौटने पर उसके परिवार वाले उसकी खोज में निकल पड़े और उस स्थान पर पहुँचे जहाँ वह मरा पड़ा था। अभी उन्हें कुछ शंका ही हो रही थी कि पत्थर से आवाज़ आई कि 'मैं लक्ष्मी नारायण हूँ। मैंने ठाकर को इसके किए की सजा दे दी। अब मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा और हर संकट से तुम्हें बचाऊँगा। तुम मेरी पूजा-अर्चना करो।' तब ठाकर के परिवार वालों ने मंदिर का निर्माण करके लक्ष्मी नारायण को स्थापित किया।

लक्ष्मी नारायण : ठाकुर

गाँव : डौहवी, तहसील : आनी।
मूल स्थान : नारायण गढ़।

मंदिर एवं भंडार : डौहवी।

स्थापत्य : काठकुणी शैली में निर्मित एक मंज़िल का मंदिर, जिसकी ढलवाँ छत स्लेटों से ढकी है। गर्भगृह में लक्ष्मीनारायण की अष्टधातु की मूर्ति स्थापित है। इसी के साथ दो मंज़िल की एक कोठी है।

अधिकार क्षेत्र : देवठी, शिल्ही, चवाई, बखनाओ, बुच्छैर, राहन, गाढवी व गमोग पंचायतें।

प्रबंध : प्रधान की अध्यक्षता में समिति।

न्याय प्रणाली : समिति के माध्यम से।

पूजा : दोनों समय धूप-दीप सहित भोग चढ़ाकर।

रथ : नहीं है।

मेले-त्योहार : भाद्रपद मास में कृष्ण जन्माष्टमी, आश्विन में शौज मेला, वसंत पंचमी, फाग मेला।

जनश्रुति : रियासत काल में लक्ष्मी नारायण का मंदिर आनी क्षेत्र की सबसे ऊँची चोटी 'नारायणगढ़' पर था और वहीं उसकी पूजा होती थी। कुल्लू पर सिक्खों के आक्रमण के समय कुल्लू नरेश ने मूर्ति व मंदिर की रक्षा की। बाद में देवता के पुजारी परिवार ने लक्ष्मी नारायण की मूर्ति आनी कस्बे के साथ लगते शमेशा गाँव में स्थापित की। कुछ काल बाद शमेशा में अकाल पड़ गया, जिससे पुजारी परिवार देवता की सुरक्षा करने में असमर्थ हो गया। एक रात पुजारी को स्वप्न में देवता ने कहा कि यदि वह उसकी देखभाल करने में अक्षम है तो उसे डौहवी गाँव ले जाए। तब शमशरी महादेव के सहयोग से लक्ष्मी नारायण की स्थापना डौहवी गाँव में हुई।

विष्णु नारायण

गाँव : कुटवा, तहसील : आनी।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : कुटवा।

स्थापत्य : लकड़ी से निर्मित लगभग 12 वर्ष पुराना मंदिर जिस पर स्लेटों की छत है।

अधिकार क्षेत्र : समस्त देवठी पंचायत।

प्रबंध : प्रधान की अध्यक्षता में समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।

पूजा : प्रातः-सायं पारम्परिक विधि से।

रथ : नहीं है।

मोहरे : मूर्ति स्थापित।

व्यास ऋषि

गाँव : कुंईर, तहसील : आनी।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : गाँव कुंईर।

शाखा मंदिर : गाँव झरौणवी।

स्थापत्य : कोट शैली में निर्मित चार मंज़िल का मंदिर लगभग 300 वर्ष पुराना है। काष्ठ-प्रस्तर निर्मित इस मंदिर की छत स्लेटों से ढकी है और शिखर पर कुरड़ है।

अधिकार क्षेत्र : रघुपुर गढ़, जांजा, जलोड़ी।

प्रबंध : कारदार व कठैला द्वारा।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।

पूजा : प्रातः-सायं धुड़छ में जड़ी-धूप जलाकर।

रथ : चिड़ी शैली।

मोहरे : पंद्रह। मुख्य मोहरा अष्टधातु का, शेष पीतल के।

मेले-त्योहार : 10 वैशाख को कुंईर में बिरशु मेला, 20 आषाढ़ को माटीधार मेला सिनवी नामक स्थान में लगता है, एक प्रविष्टे श्रावण को टगाली में शौणचा मेला, 9 श्रावण को बिशलाधार मेला, 20 भादों को राणी कोट में



मेला, रक्षाबंधन को कुंईर में पलैच मेला, प्रथम आश्विन से 3 प्रविष्टे तक सिसटी मेला, कार्तिक मास में दीपावली तथा मार्गशीर्ष की अमावस्या को बूढ़ी दीवाली।

जनश्रुति : देवता का मोहरा कुंईर से एक किलोमीटर दूर निंगलू गाँव के राख नामक स्थान पर मिला था। कहते हैं कि निंगलू गाँव का एक व्यक्ति जब पेड़ काट रहा था तो उसे दर्द भरी आवाज़ सुनाई दी और वृक्ष के कोटर से एक मोहरा गिरा, जिसकी आँख के ऊपर कुल्हाड़े से चोट लगी हुई थी। उसने वह मोहरा उठाया और ग्रामवासियों को इस विषय में सारी बात बताई। तब उन्होंने कुंईर में मंदिर का निर्माण कर उसमें मोहरे की स्थापना की। चोट का निशान आज भी मूल मोहरे पर देखा जा सकता है।

व्यास ऋषि

गाँव : झरौणू, तहसील : आनी।

मूल स्थान एवं मंदिर : गाँव झरौणू।

भंडार : गाँव कांडा।

स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर से कोट शैली में निर्मित तीन मंज़िल का मंदिर लगभग 50 वर्ष पुराना है। इसकी छत स्लेटों की है। काष्ठ पर सुंदर कला-कार्य हुआ है। मंदिर के आगे 50x50 फुट का प्रांगण है, जिस पर स्थानीय पत्थर के चक्के बिछे हैं।

अधिकार क्षेत्र : जलोड़ी, रघुपुर, जांजा, आठ पंचायतें।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में समिति द्वारा।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।

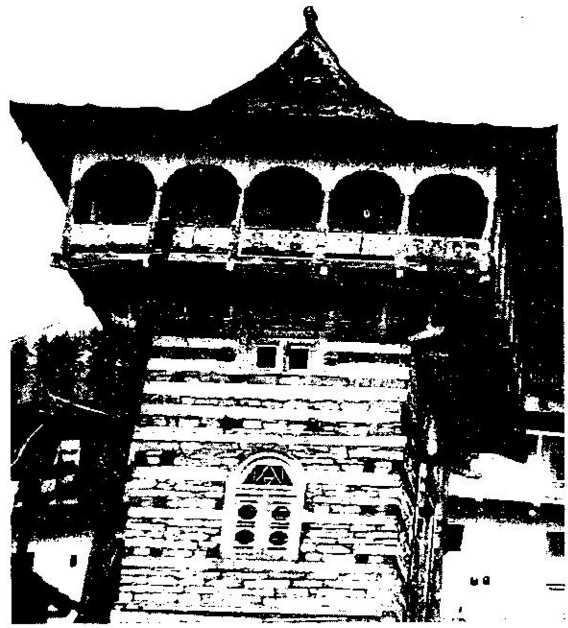
पूजा : प्रातः-सायं पंचोपचारपूर्वक।

रथ : जुगा शैली।

मोहरे : मुख्य मोहरा एक, अन्य चौबीस।

मेले-त्योहार : ठिरशू मेला, शौणचा, जन्माष्टमी, दीपावली और पलैई।

जनश्रुति : पराशर ऋषि और वसुकन्या सत्यवती का पुत्र व्यास महाभारत का युद्ध समाप्त होने के बाद भ्रमण करते



हुए लाहौल घाटी के रोहतांग दर्रे से ढालपुर, कुंवराह और फिर सरेउलसर होते हुए गाँव झरौणू तक आया था ऐसी जनश्रुति है और इसीलिए इस गाँव में व्यास ऋषि की देवता के रूप में मंदिर में पूजा होती है।

शमशरी महादेव

गाँव : कराणा, तहसील : आनी।

मूल स्थान एवं मंदिर : कराणा।

भंडार व शाखा मंदिर : गाँव शमशर।

स्थापत्य : शिखर शैली में निर्मित।

अधिकार क्षेत्र : गाँव कराणा, जाबू, जैरी, मिश्ता, शिल्ल।

प्रबंध : प्रधान की अध्यक्षता में समिति।

न्याय प्रणाली : गोबर के लड्डू डालकर।

पूजा : पारम्परिक विधि से कराणा गाँव के ब्राह्मण बारी-बारी से सुबह-शाम पूजा करते हैं।

मोहरे : पाँच।

शमशरी महादेव

गाँव : शमशर, तहसील : आनी।

मूल स्थान : त्रिवेणीघाट।

मंदिर एवं भंडार : शमशर

शाखा मंदिर : गाँव धोगी, कराणा व आनी।

स्थापत्य : पैगोडा संयोजन शैली में निर्मित एक मंज़िल का यह मंदिर काफी प्राचीन है। इसकी प्राचीनता का प्रमाण मंदिर निर्माण के बारे में टांकरी में लिखा लेख है, जिसे टांकरी के विशेषज्ञ श्री खूबराम खुशदिल द्वारा इस प्रकार अनुवाद किया गया है, 'विक्रमी सम्वत् 57 में शमशरी महादेव मंदिर का निर्माण किया गया है।' आजकल विक्रमी सम्वत् 2067 के अनुसार यह मंदिर दो हज़ार वर्ष से भी अधिक पुराना है। काष्ठ-प्रस्तर निर्मित इस मंदिर की छत स्लेटों की है। मंदिर में शिवलिंग, गणेश, शिव-पार्वती आदि की 44 प्रस्तर प्रतिमाएँ स्थापित हैं। इसी प्राचीन मंदिर के साथ काष्ठ एवं पत्थर से बने तीन अन्य भवन हैं। इनमें से दो भवन अधिक पुराने हैं, जिन्हें देव-भंडार के रूप में प्रयोग किया जाता है। तीसरा भवन नव निर्मित है, जिसमें काष्ठ व प्रस्तर का अच्छा उपयोग हुआ है। इसी में देवता के मोहरे और रथ स्थापित हैं।

अधिकार क्षेत्र : गाँव शिल्ही, देवठी, बुच्छैर, कोहिला, कमांद, खणी, कराणा।

प्रबंध : प्रधान की अध्यक्षता में कमेटी।

न्याय प्रणाली : गूर व कमेटी के माध्यम से।

पूजा : पुजारी प्रातः देव बावड़ी से जल लाकर देवता का स्नान करवा कर पंचोपचार पूर्वक पूजा करता है और शाम को आरती होती है।

रथ : जुगा शैली।

मोहरे : तीन मुख्य मोहरे, पैंतीस अन्य मोहरे।

मेले-त्योहार : शमशरी महादेव का 26 से 28 प्रविष्टे तक पारम्परिक आनी मेला लगता है। देवता के कारदार के अनुसार यह मेला 126 वर्षों से मनाया जा रहा है। इसे ज़िला स्तरीय मेला घोषित किया गया है। इसमें आनी क्षेत्र



के पनेवी नाग देवता, देहुरी नाग देवता, कुंईरी व्यास ऋषि, कोट भझारी, कुलक्षेत्र महादेव ओलवा, कुई कंडा नाग, बिनणी महादेव आदि देवी-देवता शामिल होते हैं,

25 दिसम्बर को गाँव धोगी में मेला लगता है। लगभग तीन सौ से अधिक लोग रई या तोस का करीब सौ फुट लंबा पेड़ काटकर लाते हैं और इसे मंदिर के समीप गाड़ते हैं। धोगी, छवौली, डूधा, शगान, डोगी, शमेशा, चवाई आदि गाँवों के लोग मंदिर की परिक्रमा करते हैं। धोगी गाँव के 21 परिवारों के लोग वाद्यों की धुन के साथ मशालों और बिच्छूबूटी से खूब खेलते हैं। सीतू नामक देवता का बजंत्री ज़हरीली घास और अंगारे खाता है।

यह अद्‌भुत परम्परा आज भी निभाई जा रही है, अगस्त मास में जतराला मेला लगता है। इस मेले में देवता शमशर मंदिर से धोगी गाँव जाता है। वहाँ दस दिनों तक रहता है। धोगी गाँव के मेले के समापन के बाद कुटवा और डौहवी में चार दिनों तक मेला लगता है। इसके पश्चात् खादवी, बूढ़ीधार, समासर, जाओं, लढागी, कोहिला, खुन्न, कराणा आदि 18 गाँवों में 47 दिनों तक मेले लगते हैं।

अंतिम मेला गाँव कमांद में लगता है, 2 नवंबर से 5 नवंबर तक आनी में वार्षिक लवी मेला लगता है। इस मेले में पनेवी नाग तथा कुलक्षेत्र महादेव भी शामिल होते

हैं। इस मेले का मुख्य आकर्षण देवता की शोभा यात्रा, पारम्परिक लोकनृत्य तथा पहलवानों की कुश्ती है।

जनश्रुति : कमांद गाँव का एक ग्वाला त्रिवेणी नामक स्थान में गौओं को चराने जाता था। दोपहर में जब वह सुस्ताता था तो एक गाय त्रिवेणी धार जाकर किसी स्थान पर अपने थन से दूध की धार छोड़ आती थी। शाम को घर आ कर जब गाय ने दूध देना बंद कर दिया तो ग्वाले से उसके मालिक ने पूछताछ की। ग्वाला इस बारे में अनभिज्ञ था। मालिक ने उससे गाय के दूध न देने का कारण जानने को कहा। तब अगले दिन ग्वाला गाय को देखता रहा। गाय दिन में त्रिवेणी धार की ओर चल पड़ी और ग्वाला भी उसके पीछे-पीछे चल पड़ा। उसने देखा कि एक पत्थर पर गाय के थनों से स्वतः दूध की धार गिरने लगी। ग्वाले ने यह घटना अपने मालिक को सुना दी। उसी रात मालिक को किसी देव ने स्वप्न में दर्शन देकर कहा कि उस पत्थर को उखाड़ा जाए। उसने यह स्वप्न गाँव वालों को सुनाया। उन्होंने मिलकर पत्थर को उखाड़ा तो उसके नीचे से एक शिवलिंग प्राप्त हुआ। उसी समय आकाशवाणी हुई कि इसकी स्थापना शमशर में की जाए। लोगों ने मंदिर का निर्माण कर वहाँ पिंडी स्थापित की। शमशर स्थान के नाम से यह शमशरी महादेव के नाम से विख्यात हुआ।

शाणी दुर्गा

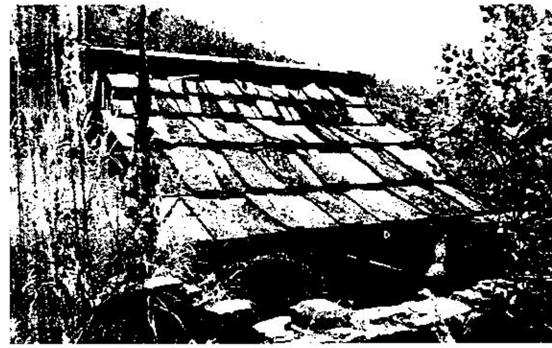
गाँव : शाणी, तहसील : आनी।

मूल स्थान तथा मंदिर : शाणी।

भंडार : गाँव घोरला।

शाखा मंदिर : घोरला।

स्थापत्य : काठकुणी शैली में निर्मित एक मंज़िल का मंदिर अति प्राचीन है। इसकी ढलवाँ छत स्लेटों से आच्छादित है। शिखर पर कुरड़ लगा है। गर्भगृह के काष्ठद्वार तथा अन्य शहतीरों पर सुन्दर नक्काशी की गई है परन्तु मंदिर जीर्ण-शीर्ण अवस्था में है।



गर्भगृह में दुर्गा की धातु निर्मित मूर्ति स्थापित है और बाहरी कक्ष में हवन कुंड है।

अधिकार क्षेत्र : सम्पूर्ण पलेही ग्राम पंचायत।

प्रबंध व्यवस्था : प्रधान की अध्यक्षता में समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।

पूजा : प्रतिदिन प्रातः पंचोपचारपूर्वक की जाती है। विशेष अवसरों पर देवी की पूजा वाद्ययंत्रों पर धुनों के साथ दोनों समय की जाती है।

रथ : जुगा शैली।

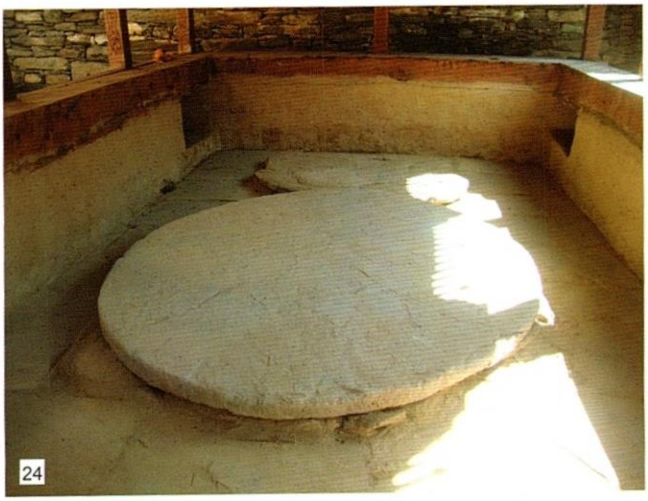
मोहरे : तेरह।

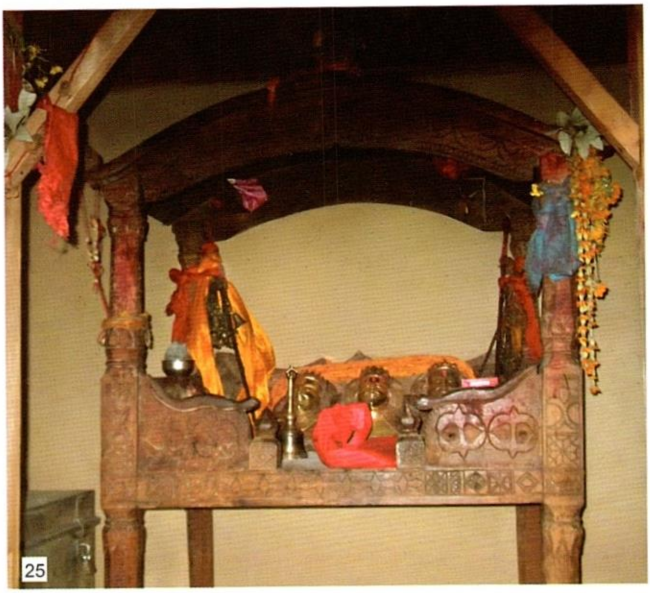
मेले-त्योहार : 13 वैशाख को घोरला गाँव में ठिरशू मेला लगता है। देवी रथ पर सुसज्जित होकर भंडार से बाहर 'सौह' में निकलती है। लोग स्वाँग और मुखौटा नृत्य करते हैं, 20 भादों को मेला डुंगर-मुंगर।

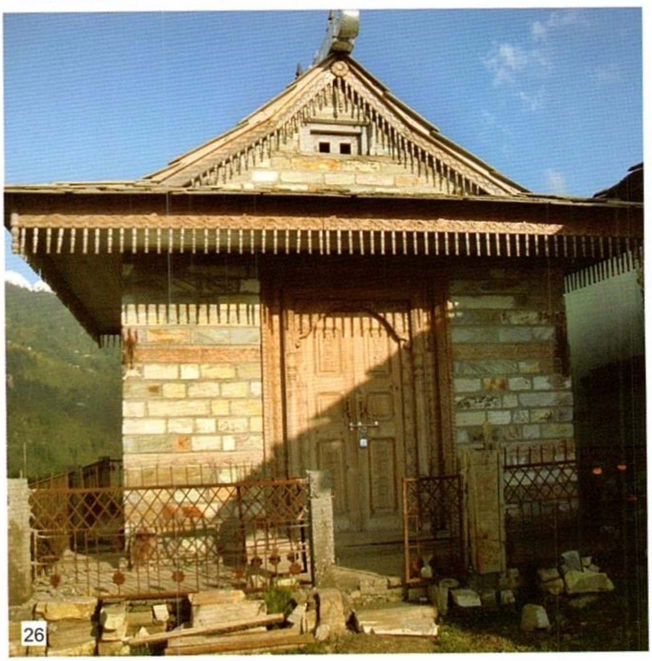
जनश्रुति : मान्यता है कि शाणी दुर्गा कचेड़ी नामक स्थान से यहाँ आई है। एक समय की बात है कि माँ दुर्गा पर शंबरासुर ने कुदृष्टि डाली। तब उसे मारने के लिए देवी ने हिमालय क्षेत्र की तरफ उसका पीछा किया। देवी को धोखा देने के लिए राक्षस ने अपनी माया से अनेक रूप बना लिए। तब माँ ने विराट रूप धारण कर कचेड़ी नामक स्थान में शंबरासुर का वध कर डाला। राक्षस का कोई रूप नष्ट होने से छूट न जाए इस संशय से माँ ने तीन कन्याओं का रूप धारण किया। उनमें से एक कन्या कचेड़ी क्षेत्र में राक्षस को ढूँढने लगा और दो अन्य सतलुज के पास विभिन्न दिशाओं में निकलीं। एक कन्या जब



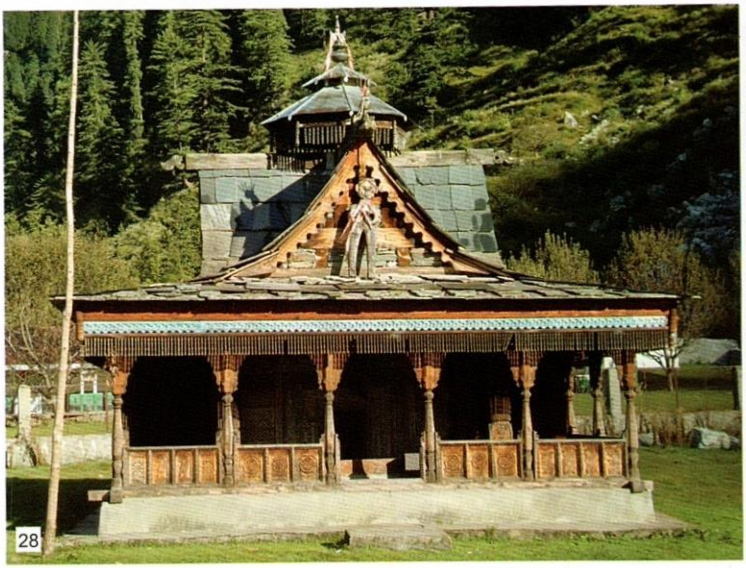

23

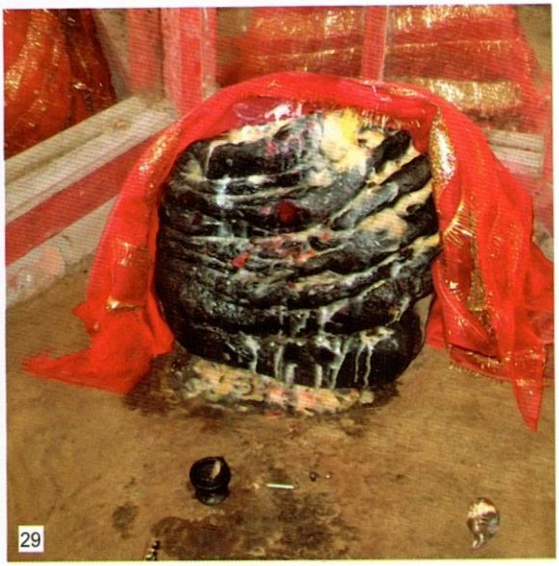

24


25


26

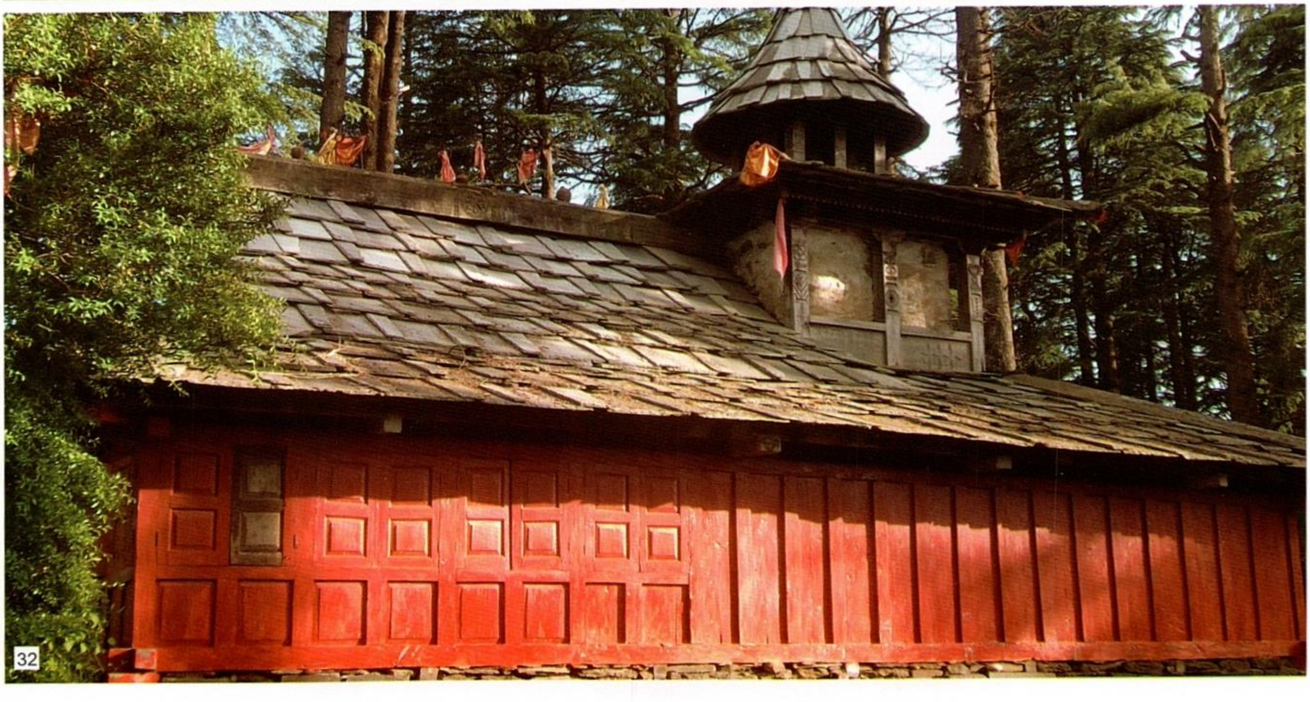

27


28


29


30


31


32



देवदर्शन : फाटो फीचर : 3

22. छेंजणू देव कलारस, निरमंड का रथ; 23. भडारलू देवता, कोट का रथ; 24. परशुराम मंदिर, निरमंड का हवन कुंड; 25. सराजपाल देवता का पूजा आसन; 26. नारसिंह मंदिर, सूमा, निरमंड; 27. चकेश्वर चम्भू मंदिर, रंदला; 28. झराणी देवी का प्राचीन मंदिर, सराहन, निरमंड; 29. नागिन माता मूर्ति, रोपा, आनी; 30. बड़ासन देवी मंदिर, बाड़ी, निरमंड; 31. माटी सिंह-भडारलू, कोट; मड़ेलू-भदराल तथा राईनाग-देथवा : अपने रथों में शोभायमान तीन देवता एक साथ; 32. नाग देवरा, टकरासी, आनी; 33. जलांडी ऋषि, निरमंड का भव्य रथ

राक्षस को ढूँढते-ढूँढते घोरला नामक स्थान पर पहुँची तो ग्रामीणों ने कन्या को अजनबी समझकर उसका परिचय पूछा। वह कुछ देर चुप रहने के बाद अदृश्य हो गई। गाँव वासियों ने इसे कोई भ्रम समझा, लेकिन उन्होंने जब कन्या को ढूँढने का प्रयास किया तो उन्हें गाँव से कुछ दूरी पर शाणी नामक स्थान में खेत में कुछ खनकने की आवाज़ सुनाई दी। पास जाने पर वह कन्या पुनः दिखाई दी। लेकिन दर्शन देकर वह फिर अदृश्य हो गई। जिस स्थान पर कन्या लुप्त हुई थी वहाँ खोदने पर उन्हें एक दिव्य मोहरा मिला। स्थानीय लोगों ने वहाँ एक मंदिर का निर्माण कर इसे शाणी दुर्गा का नाम दिया।

शेषनाग

गाँव : बिशल, तहसील : आनी।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : बिशल।

स्थापत्य : पत्थर के चबूतरे पर काष्ठ-निर्मित एक मंज़िल का यह प्राचीन मंदिर चारों ओर ढलवाँ छत वाला है। छत टीन की है। शिखर पर कुरड़ है, जिस पर कई त्रिशूल व लोहे के कड़े लगे हैं। छत के एक ओर मेरु (पैगोडा) बना है, जिस पर कलश शोभित है। गर्भगृह में पिंडी स्थापित है। बाहर के खुले कक्ष में कलात्मक काष्ठ स्तम्भ लगे हैं। आगे सीमेंट-फर्श वाला प्रांगण है। मंदिर के साथ दो मंज़िल का एक अन्य भवन है, जिसके ऊपर स्लेटों की ढलवाँ छत है। शिखर पर स्थापित कुरड़ पर कई त्रिशूल हैं। ऊपरी मंज़िल के बरामदे के बाहर की ओर चादरें लगी हैं। भवन की दीवारों पर सीमेंट से लिपाई करके रंग-रोगन किया गया है। इस भवन में देवता के मोहरे, रथ, आभूषण, वाद्ययंत्र आदि रखे जाते हैं।

अधिकार क्षेत्र : गाँव बिशल, कुआण, शिकारण।

प्रबंध : ग्रामवासियों द्वारा।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।

पूजा : प्रातः-सायं धूप-दीप से।

रथ : जुगा शैली।



मोहरे : दस अष्टधातु के व चार चाँदी के।

मेले-त्योहार : वैशाख मास में देवता काली माता के स्थान बाहल गाँव जाता है, जहाँ उसके प्रजाजन पूजा करके बकरी की बलि देते हैं और ओलावृष्टि आदि प्राकृतिक प्रकोपों से अपनी फसल की रक्षा हेतु प्रार्थना करते हैं, 20 आषाढ़ को चलाऊगी गाँव में एकदिवसीय मेला लगता है, श्रावण मास में शौणचा मेला का आयोजन होता है जो तीन दिन तक चलता है। मार्गशीर्ष अमावस को बिशल गाँव में बूढ़ी दीवाली का आयोजन होता है।

जनश्रुति : किसी समय बिशल गाँव पर एक निर्दय ठाकुर का राज था। उसके पास बहुत-सी गायें थीं, जिन्हें चराने के लिए एक ग्वाला समीप ही देऊ पुण्ई नामक स्थान पर ले जाता था। एक बार शाम के समय उन गायों में से एक गाय ने दूध देना बंद कर दिया। जब कई दिनों तक ऐसा ही होता रहा तो ठाकुर ने ग्वाले से पूछा परंतु वह कुछ भी बताने में असमर्थ रहा। एक दिन ठाकुर इस बात का पता लगाने के लिए स्वयं ग्वाले के साथ गया। शाम के समय उन्होंने देखा कि वह गाय एक झाड़ी के पास जाकर खड़ी हो गई और उसके थनों से अपने आप दूध झरने लगा। ठाकुर ने झाड़ी के पास जाकर जब उसे उखाड़ा तो उसके नीचे एक मोहरा दिखाई दिया, परन्तु क्रुद्ध ठाकुर ने उसे नहीं उठाया और वापिस लौट आया। ग्वाले ने सारी घटना जब ग्रामवासियों को सुनाई तो वे उस मोहरे को वहाँ से ले आए। उसी समय आकाशवाणी द्वारा उन्हें पता चला कि

वह शेषनाग देवता का मोहरा है। देवता ने ठाकुर का सर्वनाश कर दिया और उसकी भूमि पर देवता का अधिकार हो गया। इस चमत्कार को देखकर बिशल गाँव के लोगों ने देवता के निमित्त मंदिर, रथ और सोने-चाँदी के आभूषण बनाए।

सराजपाल

गाँव : जाओं, तहसील : आनी।
मूल स्थान एवं भंडार : जाओं
शाखा मंदिर : नाली।
स्थापत्य : दो मंज़िल का यह मंदिर तीन वर्ष पूर्व निर्मित हुआ है। काष्ठ-प्रस्तर निर्मित इस मंदिर की छत स्लेटों से ढकी है। मंदिर में काष्ठ कला का कार्य हुआ है और रंग-रोगन भी हुआ है। मंदिर के सामने लगभग डेढ़ बिस्वे का मैदान है, जहाँ देवता का मेला लगता है।

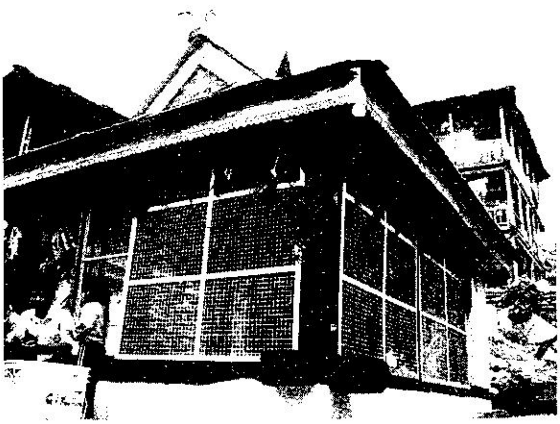


अधिकार क्षेत्र : गाँव जाओं, नाली, बनास, चन्द्रादौण।
प्रबंध : देवता के कारदारों द्वारा।
न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।
पूजा : प्रातः-सायं लगभग साढ़े सात बजे।
रथ : चिड़ी शैली।
मोहरे : मुख्य मोहरा एक इसके साथ अन्य चौदह मोहरे।
मेले-त्योहार : कोई मेला नहीं होता। त्योहारों में बैसाख मास तथा श्रावण मास की संक्रांति को साजा तथा आश्विन मास की संक्रांति को 'शैरी' मनाई जाती है। देवता बैसाख मास के 6-7 प्रविष्टे को यात्रा पर ठेल बुच्छैर से पीछे जाता है, श्रावण मास के 8-9 प्रविष्टे को बूढ़ी नागिन से मिलने सरेउलसर तथा मार्गशीर्ष मास की संक्रांति को चूड़ काली माता के पास आशीर्वाद लेने जाता है।
जनश्रुति : यह देवता शिमला ज़िला के रामपुर बुशहर से निरमंड, बैहना, शमशर, बझांडा जोत, लुहूट, चूड़धार, महरुटी, लढागी, बनास, शरोगी (कवाईथाच) होकर जाओं पहुँचा।

जाओं 'माण-मरेछों' का गाँव था। देवता सराजपाल ने इनका संहार करके यहाँ अपना स्थान बनाया और नेहरी गाड़ (अँधेरी खड्ड) के किनारे जाकर वास किया। यहाँ इसका प्राचीन देवरा (मंदिर) है। कालांतर में नाली गाँव के लोग देवता की सहमति से उसे अपने गाँव लाए और वहाँ मंदिर का निर्माण कर इसे स्थापित किया।

सराजपाल

गाँव : धामणी, तहसील : आनी।
मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : धामणी।
शाखा मंदिर : पालीबील, जाओं।
स्थापत्य : एक मंज़िल का सीमेंट से निर्मित नया मंदिर, जिसकी छत टीन से ढकी है।
अधिकार क्षेत्र : आनी खंड की चवाई, बखनाओं व शिल्ही पंचायतें।
प्रबंध : प्रधान की अध्यक्षता में समिति।
न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।
पूजा : केवल प्रातः के समय पूजा होती है।
रथ : नहीं है।
मोहरे : दो।
मेले-त्योहार : सराजपाल देवता शमशरी महादेव के मेले



व त्योहारों में सम्मिलित होता है, प्रति संक्रांति को देवता की विशेष पूजा होती है।

जनश्रुति : प्राचीन समय में धामणी गाँव के किसी किसान को पालीबील नामक स्थान पर खेत की खुदाई करते समय एक मोहरा मिला, जिसे वह अपने साथ ले आया और गाँव वालों को इसके बारे में बताया। उसी समय उपस्थित लोगों में से किसी व्यक्ति को 'खेल' आई और देवता ने उस व्यक्ति के माध्यम से बताया कि वह सराजपाल देवता है। तब धमाणी और चवाई गाँव के लोगों ने मिलकर धामणी में मंदिर का निर्माण किया और उसमें देवता की स्थापना की।

सराजपाल

गाँव : पाली, तहसील : आनी।

मूल स्थान एवं मंदिर : पाली।

शाखा मंदिर : गाँव छकलेड़

स्थापत्य : पहाड़ी शैली में निर्मित 250 वर्ष पुराने दो मंज़िल के मंदिर में अधिकांशतः लकड़ी का प्रयोग किया गया है और ढलवाँ छत स्लेटों की है।

अधिकार क्षेत्र : गाँव पाली, छकलेड़, नगौट, कुटवा, जटेड़, रगेड़, चकाली, झमेड़ धारटी, नागणी धार।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।

पूजा : प्रतिदिन प्रातः-सायं धूप-दीप से।

रथ : जुगा शैली।

मोहरे : एक मुख्य मोहरा तथा छह अन्य परन्तु रथ पर देवता के साथ केवल चार मोहरे लगते हैं।

मेले-त्योहार : शालणू मेला हारगी जिसमें देवता अपनी हार की परिक्रमा करता है और प्रजा देवता के निमित्त अन्न भेंट करती है।

जनश्रुति : लाहुल से यह देवता सर्वप्रथम बाहरी सराज में आनी क्षेत्र के नगौट गाँव में आया। वहाँ से वह रगेड़, छकलेड़ से होता हुआ पाली गाँव में आया और उसने एक वृक्ष पर अपना स्थाई निवास बना लिया।

इसके सौ वर्ष पश्चात् एक किसान को खेत में हल चलाते हुए एक मूर्ति मिली। वह इसे अपने घर ले आया और गाँववालों को इस सम्बंध में बताया। उन्होंने पूछ डाली तो पता चला कि यह मूर्ति पेड़ पर रहनेवाले देवता का है। तब लोगों ने उसके लिए मंदिर बनाकर उसमें मूर्ति की स्थापना की और वह सराजपाल के नाम से जाना जाने लगा। यह देवता अपनी प्रजा के दुःखों का निवारण कर उनकी मनोकामना पूर्ण करता है।

सरीणी देवता

गाँव : लफाली, तहसील : आनी।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : लफाली।

शाखा मंदिर : बगोलीधार।

स्थापत्य : दो मंज़िल का यह मंदिर लगभग छियानबे वर्ष पुराना है। काष्ठप्रस्तर निर्मित यह काठकुणी शैली का मंदिर है। स्लेटों से आच्छादित इसकी ढलवाँ छत पर कुरड़ है।

अधिकार क्षेत्र : गाँव लफाली, बुच्छैर, लढागी, कमाली, शिला आरण, तराला।

प्रबंध : प्रधान की अध्यक्षता में समिति।

न्याय प्रणाली : पर्ची बनाकर, लड्डू डालकर, चावल व

सरसों के दाने देकर, घास की पत्ती से, किसी व्यक्ति के माध्यम से।

पूजा : प्रातः-सायं नित-नियम से।

रथ : नहीं है। देवता का प्रतीक गज़ है।

मेले-त्योहार : बैशाख, आश्विन तथा माघ मास की संक्रांति को 'साजा' मनाया जाता है। इसके अतिरिक्त जन्माष्टमी मनाई जाती है।

जनश्रुति : सरीणी देवता सर्वप्रथम बगोली धार में प्रकट हुआ, जहाँ चूड़धार से कालिका मनोरंजन के लिए आती थी। उन्होंने सरीणी देवता को चुनौती दी कि यदि वह उन्हें जुए में हराएगा तो वे उसे वहाँ स्थान देंगी, अन्यथा उसे उनका सेवक बनकर वहाँ रहना होगा। सरीणी ने उनकी चुनौती स्वीकार की और उन्हें जुए में हरा बगोली में अपना स्थान ले लिया। वहाँ से आगे निकल कर उसने लढागी, बुच्छैर तथा लफाली को अपने अधिकार क्षेत्र में ले कर बौचा-बावड़ी से लूहडा बावड़ी तक अपनी सीमा बाँध दी। लफाली गाँव वासियों ने यहाँ मंदिर का निर्माण कर देवता की पूजा आरम्भ कर दी। मंदिर प्रतिदिन खुला नहीं होता है, यह त्योहार की तिथियों में ही खुलता है।

सुरगसीन नाग

गाँव : बालू, तहसील : आनी।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : सुगसीन, बालू।

स्थापत्य : पुराने समय में नाग की स्थापना त्रिशूल रूप में वृक्ष पर थी, लेकिन अब लगभग तीन वर्ष पूर्व एक मंज़िल का लकड़ी व प्रस्तर से पहाड़ी शैली का मंदिर बनाया गया है, जिसकी ढलवाँ छत स्लेटों से आच्छादित है। इसमें पिंडी स्थापित है।

अधिकार क्षेत्र : करशैईगाड़ पंचायत।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में।

न्याय प्रणाली : गूर द्वारा, लड्डू डालकर।

पूजा : प्रातः-सायं पंचोपचार विधि से।

रथ : रथ नहीं है। केवल लोहे की छड़ में घंटियाँ लगी हैं।



मेले-त्योहार : बैशाख मास की संक्रांति को सुरगसीन में मेला लगता है।

जनश्रुति : घास के लिए जा रही किसी गर्भवती स्थानीय महिला को सुरगसीन नामक स्थान में एक नाग पिंडी से लिपटा मिला। महिला उसे देखकर भयभीत हो गई। तब नाग ने कहा 'मुझसे न डरो मैं तुम्हारा रक्षक हूँ। मेरी इस स्थान पर स्थापना की जाए और तुम्हारे गर्भ से पैदा होने वाली संतान मेरी पूजा करे।' आज भी उसी के वंशज नाग देवता के पुजारी बनते हैं।

सैन्नी देवता

गाँव : गागणी, तहसील : आनी।

मूल स्थान : सैन्ना गाड़।

मंदिर तथा भंडार : गागणी।

स्थापत्य : दो मंज़िल के इस मंदिर का निर्माण पाँच वर्ष

पूर्व किया गया है। यह पत्थर के चबूतरे पर बना है। काष्ठ-प्रस्तर निर्मित मंदिर में चार बड़े-बड़े कमरे हैं। इसमें कला का उत्कृष्ट कार्य हुआ है। मंदिर की दीवारों में सीमेंट की लिपाई तथा रंग-रोगन किया गया है। इसकी ढलानदार छत स्लेटों की है, जिस पर कुरड़ लगा है। कुरड़ पर स्टील के तीन कलश सजे हैं। मंदिर के प्रांगण में पत्थर के चक्के बिछाए गए हैं।

अधिकार क्षेत्र : समस्त खणी पंचायत।

प्रबंध : प्रधान की अध्यक्षता में समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से तथा कमेटी द्वारा।

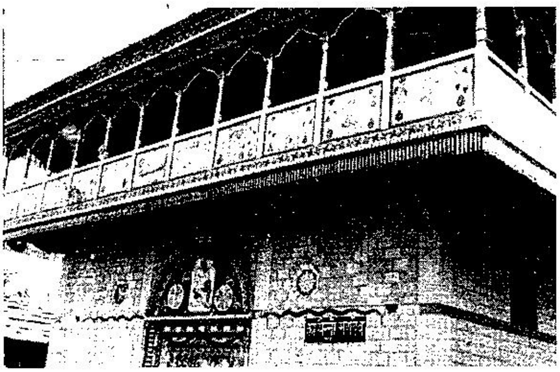
पूजा : प्रातः-सायं पंचोपचार विधि से।

रथ : जुगा शैली का काष्ठ निर्मित।

मोहरे : एक मुख्य मोहरा तथा दो अन्य।

मेले-त्योहार : फाल्गुन मास के प्रथम रविवार को देवता की विशेष पूजा होती है।

जनश्रुति : इसकी उत्पत्ति बुशहर में हुई मानी जाती है। वहाँ से यह डीम खवांडा और शमदी होकर सैन्ना गाड़ पहुँचा। किसी किसान को लकड़ी काटते हुए एक प्रतिमा



मिली। उसने उसे लाकर अपने गाँव में रख दिया। लोगों ने एक मंदिर का निर्माण कर उसमें प्रतिमा की स्थापना की और उसे पूजना आरम्भ कर दिया। स्थान के नाम पर यह सैन्नी देवता प्रसिद्ध हुआ। कुछ समय बाद क्षेत्र में इसकी प्रतिष्ठा बढ़ने पर गागणी में भी इसके मंदिर का निर्माण किया गया और आजकल यह गागणी, चौहणी, खुन्न, शगागी, वारवी, महवी आदि गाँवों का अधिष्ठाता है।



पुस्तक में आए स्थानिक शब्दों का परिचय

कारी : देवता से प्रश्न पूछने की एक विधि। कारी द्वारा न्याय करने के लिए देवता को कंधे पर उठाया जाता है। उठाने वाले सीधे खड़े रहते हैं। कार्य सिद्धि हेतु पूछने वाला व्यक्ति मन में प्रश्न लेकर देवता के समक्ष खड़ा होता है। यदि देवता अपने आप आगे की ओर झुक जाए तो कार्य सिद्धि मानी जाती है और यदि वह पीछे की ओर धक्का मारे तो कार्य सफल नहीं होता, यानी विपरीत उत्तर होता है, ऐसी मान्यता है।

काठकुणी : गृहनिर्माण की एक शैली। इसमें पत्थर की लगभग डेढ़ फुट चौड़ी और डेढ़ फुट ऊँची चिनाई के बाद दीवार पर दो शहतीरें समानांतर बिछाई जाती हैं। इनके बीच की खाली जगह की भराई पत्थरों से की जाती है। इसके बाद साथ की दीवार के ऊपर भी इसी तरह शहतीरें बिछाई जाती हैं, जिसके कोने पहली दीवार की शहतीर के ऊपर आड़े आते हैं। ये दीवार को थामने में सक्षम होते हैं। पहाड़ी बोली में काठ का अर्थ लकड़ी और कुणी का अर्थ कोना है। इस प्रकार दीवार के कोने पर दोहरी लकड़ी पड़ने के कारण चिनाई में चारों कोने लकड़ी के बनते हैं; इसलिए इस शैली को काठकुणी नाम दिया गया है।

कुरड़ : मंदिर की ढलवाँ छत के शिखर पर लगा देवदार का बड़ा शहतीर। इसे छत पर विशेष पूजन और बलि आदि के अनुष्ठान के साथ स्थापित किया जाता है। जब सड़ जाने पर इसे दोबारा बदलना हो तो बकरे की बलि देकर ही उतारा जाता है।

कोठी : वह भवन जहाँ देवता का रथ व साजो-सामान रखते हैं और इसमें पुजारी व कारदारों आदि के लिए आवास कक्ष तथा सभा कक्ष भी होते हैं। कोठी प्रायः गाँव के मध्य बनाई जाती है, क्योंकि उसमें बहुमूल्य भंडार तथा देवता की पहरेदारी के लिए लोग और पुजारी आदि रहते हैं।

गणैई : देवता द्वारा भविष्य में घटित होने वाली घटनाओं की अपनी प्रजा को दी जाने वाली जानकारी की रस्म। लोकविश्वास के अनुसार 7 माघ को सभी देवी-देवता स्वर्ग को जाते हैं। वहाँ ब्रह्मा की अध्यक्षता में उन्हें आने वाले वर्ष के लिए फसलों आदि का हिस्सा बाँटा जाता है। इस हिस्से के बारे में देवता स्वर्ग से लौटने के बाद माघ तथा फाल्गुन मास की संक्रांति के दिन अपने गूर के माध्यम से अपनी प्रजा को जानकारी देते हैं। इस रस्म को गणैई कहते हैं।

घृतमा : एक त्योहार जिसमें देवता के सम्पूर्ण विग्रह को घृत से ढका जाता है। यह माघ मास की संक्रांति के दिन ग्राम देवता, स्थान देवता व गृह देवता को लगाया जाता है जो कहीं सप्ताह तक, कहीं पंद्रह दिनों तक और कहीं मास पर्यन्त लगा रहता है। जनश्रुति के अनुसार घृत लगने के उपरांत ये देवता कुल्लू के पंद्रह-बीस क्षेत्र में बंडे-बील नामक थाच (ऊँचाई का मैदान) को चले जाते हैं। वहाँ देवासुर संग्राम होता है। इसके बाद सभी देवता देवराज इंद्र की सभा में भाग लेने जाते हैं और सभा की समाप्ति पर ये विजय-पराजय के अनुसार मनुष्य जीवन के लिए वर्ष भर के शुभाशुभ फल लेकर लौटते हैं। संक्रांति से सातवें दिन अथवा अन्य निश्चित तिथि को देव प्रतिमा पर से वह घृत निकाल लिया जाता है।

छेरना : देवशक्ति का संचरण होने पर गूर (देव प्रवक्ता) के शरीर में कंपन होता है। गूर पूरी गंभीरता और एकाग्रता के साथ देव-शक्ति को आत्मसात् करता है। इसी को 'छेरना' कहते हैं। लोगों के कष्ट, दुःख, बीमारी आदि की समस्याओं को सुनकर उनका समाधान गूर इसी अवस्था में बताता है। उस समय वह देवता की मूर्ति, घोंडी-धड़छ या देव-रथ को सामने रखकर ध्यान लगाता है। देवशक्ति के आगमन पर उसे कंपन होने लगता है और उसकी टोपी सिर से गिर जाती है, बाल बिखर जाते हैं और वह देवता की तरफ से वचन बोलता है। इस तरह की छेरना क्रिया को 'देव खेल' भी कहते हैं।

ठहरी : परम्परा से निर्धारित देव स्थल, जहाँ वह यात्रा या मेले के दिन ठहरता है। इस स्थल की शुद्धि करके धूप-दीप से पूजा की जाती है, तत्पश्चात् देवता वहाँ बैठता है। इसे **'ठहरी-पूज'** कहते हैं।

डाउड़ी : देवता का प्रतीक-चिह्न जो छड़ के आकार का होता है।

देवरा : लघु देवगृह। किसी देवता की 'हार' अर्थात् प्रजा क्षेत्र के अंदर बने छोटे मंदिर। इनमें साधारणतः कोई देवता या देवमूर्ति नहीं होती, परंतु जब देवता अपने क्षेत्र की परिक्रमा पर निकलता है तो देवरा विश्राम के लिए ठहरता है। इसके अतिरिक्त जब कभी देवता के कारिंदे देव कार्य पर निकले हों तो 'देवरा' में ठहर सकते हैं।

परौल़ : देवता के मंदिर का मुख्य द्वार जो काष्ठ का होता है। चाँदी या पीतल के पतरों पर देवी-देवताओं की विभिन्न लीलाओं से सम्बंधित चित्र उकेर कर इन्हें परौल़ पर मढ़ा जाता है। परौल़ को कलात्मक सज्जा के साथ दर्शनीय बनाया जाता है।

पलैई : यह एक प्रकार का ध्वज दंड है, जिसे देवदार के पूरे वृक्ष को काट-तराश कर तैयार किया जाता है। इसी के नाम पर यह शब्द उस त्योहार के लिए रूढ़ हो गया है, जिसमें देवता के मंदिर के सामने या 'सौह' में पलैई गाड़ने की परम्परा निभाई जाती है। इसे निर्धारित समय पर (कहीं तीन वर्ष और कहीं पाँच वर्ष बाद) किसी मेले आदि के अवसर पर बदल दिया जाता है। पलैई के लिए वृक्ष का चयन देवता स्वयं करता है। वृक्ष काटने से पहले बकरे की बलि दी जाती है और फिर उसे निश्चित स्थान पर खड़ा किया जाता है। पलैई को पलैच भी कहा जाता है।

बेठर : बहुत ऊँचाई पर उगने वाला एक झाड़ीनुमा पौधा जो सुगंधित होता है। इसके पत्तों का हवन वातावरण को शुद्ध करने वाला माना जाता है। इन पत्तों को धड़छ की अग्नि में डालकर धूप के रूप में प्रयुक्त किया जाता है।

भारथा : यह देवता का इतिहास है। इसमें देवता का वृत्तांत सुनाया जाता है। यह मेले के अवसर पर गूर द्वारा सुनाई जाती है।

मल़ोही पाणा : देवता से 'पूछ' डालने की एक विधि, जिसमें देवता को सिर या कंधे पर उठाया जाता है। ताज़े गोबर की तीन पिंडियाँ बनाकर उन्हें दूर-दूर रखा जाता है। व्यक्ति विशेष, जिसने देवता से प्रश्न का उत्तर प्राप्त करना है, उन तीनों पिंडियों को तीन अलग-अलग संभावित कारणों के लिए निश्चित करता है। देव-वाद्य बजते हैं और देवता नाचते हुए किसी एक पिंडी पर झुकता है। वही देवता का उत्तर माना जाता है।

माण-मरेछ : मायावी और आततायी आदिम जाति विशेष के लोग, जो इन पहाड़ों में कोल, खश, आर्य जनों की सभ्यता की स्थापना से पहले निवास करते थे।

मुआणे : ऐसे समृद्ध और शक्तिशाली लोग, जिनका पूरे क्षेत्र में वर्चस्व होता था।

मोहरा : मुख का आकार यानी मुखौटा। यह धातु का मुखावरण या मुख-पट होता है। इसमें कान और उससे आगे का पूरा चेहरा मूर्त होता है। मोहरा इतनी कुशलता से तैयार किया जाता है कि इसमें हँसी, गम्भीरता, रोष, क्रोध आदि भाव पूरी तरह मुखर होते हैं। मोहरे अष्टधातु, स्वर्ण, रजत, पीतल व काष्ठ आदि के बने होते हैं। मुख्य मोहरा, जिसमें देवता की आत्मा का वास माना जाता है, **मूली-मुख** या **जीऊ-मुख** कहलाता है।

रथ : लकड़ी का वह लघु मंदिर जिसमें सुंदर रंगीन वस्त्र, आभूषण और मोहरे सजाकर रथ का रूप दिया जाता है। यह प्रायः देवदार, दरल वृक्ष, भेखल झाड़ी तथा बाँस का बनाया जाता है। प्रत्येक देवता का एक निर्धारित वन क्षेत्र होता है, जहाँ से यह लकड़ी लाई जाती है। जब कभी रथ पुराना या अशुद्ध हो जाए तो देवता स्वयं नया रथ बनाने का आदेश देता है। वह गूर के माध्यम से वृक्ष विशेष का चुनाव करता है। काटने से पहले बकरे की बलि दी जाती है और तब वृक्ष गिरा कर रथ तैयार किया जाता है। इसके भिन्न स्वरूप होते हैं। कंधे पर उठाए जाने वाले देवताओं के रथ का मूलाधार प्रायः ढाईफुट वर्गाकार का काष्ठखंड होता है। इसे पालक कहते हैं। इसके नीचे चारों कोनों पर पाँच-छह इंच के धातु मढ़े पावे लगे होते हैं। काष्ठखंड से ऊपर के आकार में विशिष्टता और भिन्नता होती है। 'खड़ा रथ' में काष्ठ खंड के ऊपर लगभग तीन फुट का किंचित् बारीक गोल गला होता है। इसे शीव कहते हैं। यहीं मोहरे लगाए जाते हैं। उसके ऊपर पाँच फुट परिधि का गोल सिर बना होता है, जिस पर बीस-पचीस इंच की परिधि का छत्र अलंकृत किया जाता है। **'जुगा रथ'** और **'चिड़ी रथ'** की शैली **'खड़ा रथ'** जैसी ही होती है। 'फेटा रथ' मूलाधार से ऊपर पीछे की ओर ढलवाँ होता है। लकड़ी को आगे से तराशा जाता है, परंतु चौड़ाई पूरे तख्त की समान रहती है। इसी भाग पर सोने-चाँदी के मोहरे लगे होते हैं। 'करंडू' रथ को सिर पर उठाया जाता है। इसका मूल ढाँचा प्रायः दो-ढाई फुट लंबा, नौ इंच मोटा और चौड़ा होता है। यह भेखल या बाँस का बना होता है।

लड्डू डालना : देवता द्वारा न्याय किए जाने का एक विधान। इसमें देवता के गूर के सामने पानी का एक लोटा रखा जाता है। गोबर के तीन पिंड, जिन्हें लड्डू कहते हैं, बनाए जाते हैं। एक लड्डू के अंदर एक व्यक्ति के नाम पर चावल के दाने और एक में दूसरे व्यक्ति के नाम के फूल डाले जाते हैं। तीसरे लड्डू को पँच माना जाता है। लोटे के सामने धूप-दीप जलाकर, देवता का ध्यान करके बराबर वज़न के दोनों लड्डू पानी के लोटे में डाल दिए जाते हैं। कुछ समय बाद उनमें से एक लड्डू पानी के ऊपर तैर जाता है और दूसरा तल में बैठ जाता है। जिसके नाम का लड्डू ऊपर तैरता है, उसे सच्चा मान कर फैसला उसी के पक्ष में सुनाया जाता है।

सौह : देव प्रांगण। एक तरह का खुला मैदान, जहाँ मेले के दौरान देवता के रथ को नचाया जाता है। यहाँ मेले में आए लोग बड़ी संख्या में चारों ओर एकत्रित होकर गाते-नाचते हैं। हर देवता की एक सौह होना ज़रूरी है, जो मंदिर के प्रांगण अथवा दूसरे गाँव में यथास्थान कहीं भी हो सकती है।

हार : देवता का विशेष प्रजा क्षेत्र, जिसमें वह पूजा जाता है। कभी-कभी देवता अपनी प्रजा की सुख-शांति के लिए अपनी 'हार' में यात्रा पर भी जाता है।

कुल्लू ज़िला के बाहरी सराज के देवताओं की भू-सम्पत्ति

निरमंड खंड

क्रम	देवता का नाम		भू-सम्पत्ति
1.	अंबिका माता, निरमंड	-	22½ बीघा क्यार (जहाँ धान उगाए जाते हैं) तथा 38 बीघा बाथल (मात्र वर्षा पर आधारित)।
2.	कशैलड़ू देव, बायल	-	6 बीघा।
3.	चंडी देवी, निरमंड	-	केवल मंदिर परिसर की भूमि देवता के नाम है। बाकी सारी भूमि मुज़ारों के नाम चढ़ गई है।
4.	चंभू कशोलड़, कशोली	-	26 बीघा।
5.	चंभू चकेश्वर, रंदल	-	पहले 750 बीघा भूमि थी जो भूमि अधिनियम के बाद मुज़ारों के नाम चढ़ गई, अब देवता के नाम कोई भूमि नहीं है।
6.	चंभू द्रोपू, द्रोपा	-	एक बीघा।
7.	चंभू सनगेसर, देउगी	-	15 बीघा क्यार।
8.	चजाई नाग, शरशाह	-	अधिनियम से पूर्व 100 बीघा भूमि थी, जिसमें से अब मात्र 6 बीघा भूमि ही देवता के नाम है। शेष मुज़ारों के नाम चढ़ गई है।
9.	चलासनी देवी, जाओं	-	लगभग 17 बीघा बाथल भूमि।
10.	चेवड़ी माता, चेवड़ी	-	सारी भूमि मुज़ारों के नाम चढ़ गई है।
11.	छैंजणू देव, कलारस	-	कोई भूमि नहीं है। देवता का मंदिर भी कुमतराम व दिलाराम की ज़मीन पर बना है।
12.	जलांडी ऋषि, सराहन	-	42 बीघा, 7 बिस्वा बाथल भूमि।
13.	जाहरू नाग, खरगा	-	अधिनियम से पूर्व 469 बीघा भूमि थी, जिसमें से अब मात्र 18 बीघा, 18 बिस्वा भूमि ही देवता के नाम है, शेष मुज़ारों के नाम चढ़ गई है।
14.	झाकड़ू नाग, धार	-	25 बीघा।
15.	डगेणी दुर्गा, डगेणी	-	4 बीघा।
16.	दमासन देवी, कुशवा	-	गैर माफीदार।
17.	दशनामी अखाड़ा, निरमंड	-	अखाड़े की भूमि तो है परन्तु उस पर निरमंड गाँव का प्रभुत्व है।
18.	धनेश्वरी माँ, धनाह	-	4½ बीघा।

19.	नगेला देव, टौरड़ी	-	18 बीघा बगीचा है। अधिनियम के अधीन सारी भूमि मुज़ारों के नाम चली गई थी, लेकिन मुज़ारों ने इसे लेने से इनकार कर दिया और भूमि देवता को वापिस लौटा दी।
20.	नातली नाग, रामगढ़	-	30 बीघा, 12 बिस्वा।
21.	नारसिंह, सूमा	-	4½ बीघा।
22.	बड़ासन देवी, बाड़ी	-	1½ बीघा भूमि देवी के नाम है। शेष भूमि मुज़ारों के नाम चढ़ गई है।
23.	बूढ़ा महादेव, निथर	-	देवता के नाम कोई भूमि नहीं है, अधिनियम के बाद सारी भूमि मुज़ारों के नाम चढ़ गई है।
24.	भढारलू देव, कोट	-	वर्तमान में देवता के नाम 7 बीघा बाथल भूमि है, पहले देवता के पास अधिक भूमि थी, जो मुज़ारों के नाम चढ़ गई है।
25.	माही नाग, ओली नाल।	-	मात्र 2 बिस्वा।
26.	मारकंडा ऋषि, ईशवा	-	देवता के नाम केवल 5 बीघा बाथल भूमि। शेष भूमि मुज़ारों के नाम चढ़ गई है।
27.	मारकंडा ऋषि, नोर	-	लगभग 5 बीघा क्यार। मुज़ारों के नाम कोई भूमि नहीं चढ़ी।
28.	रायनाग, देथवा	-	पहले देवता के पास 62 बीघा भूमि थी, जिसमें से 50 बीघा भूमि मुज़ारों के नाम चढ़ गई है। शेष 12 बीघा भूमि जो उपजाऊ नहीं है, देवता के नाम है।
29.	रियासी नाग, ढलैर	-	9 बीघा बगीचा देवता के नाम है। मुज़ारों के नाम कोई भूमि नहीं चढ़ी है।
30.	लटासण देवी, दुराह	-	अधिनियम से पूर्व 24 बीघा भूमि थी, अब केवल 12 बिस्वा ज़मीन देवता के नाम है, शेष भूमि मुज़ारों के नाम चढ़ गई है।
31.	विष्णु देऊ, पुजारली	-	मंदिर परिसर की लगभग 2 बिस्वा भूमि है।
32.	शक्त ऋषि, थंथल	-	देवता के नाम कोई भूमि नहीं है। अधिनियम से पूर्व चांबी नामक स्थान में देवता के नाम 14 बीघा क्यार, 1½ बीघा बाथल भूमि थी, जो मुज़ारों के नाम चढ़ गई है।
33.	सराजी देऊ, शमारनी	-	मात्र 3 बिस्वा।

आनी खंड

क्रम	देवता का नाम		भू-सम्पत्ति
1.	काली नाग, लढागी	-	मंदिर परिसर की मात्र 12 विस्वा भूमि।
2.	काली माता, परकोट	-	मंदिर स्थान, जो लगभग 4 विस्वा है।
3.	कुंगशी महादेव, कुंगश	-	भूमि अधिनियम के बाद अधिकतर ज़मीन मुज़ारों के नाम हो गई है। देवता के नाम केवल 40 बीघा भूमि है।
4.	कुईकंडा नाग, तांदी	-	15 बीघा। सारी भूमि देवता के नाम संरक्षित है।
5.	कुईकंडा नाग, शगोगी	-	300 बीघा ज़मीन में से आधी मुज़ारों के नाम चढ़ गई है, शेष 150 बीघा देवता के नाम है।
6.	कुलक्षेत्र महादेव, ओलवा	-	95 बीघा। सारी भूमि देवता के नाम संरक्षित है।
7.	कुसुंबा माता, खेगसू	-	11 बीघा।
8.	खुडीजल देवता, देहुरी	-	पूर्व की कुल 5000 बीघा ज़मीन में से देवता के नाम केवल 100 बीघा भूमि ही रह गई है। शेष सारी मुज़ारों के नाम चढ़ गई है।
9.	खोलू देवता, देहुरी	-	2 बीघा।
10.	गड़ूमी नाग , कुटवा	-	केवल मंदिर परिसर की भूमि।
11.	गड़ूमी नाग, शगागी	-	मंदिर स्थान तथा खुन्न गाँव में देवता की सौह (प्रांगण)।
12.	छैंजणू देवता, निंगलू	-	मंदिर परिसर की 2 बिस्वा भूमि।
13.	जल देवता, धार	-	8 बिस्वा।
14.	जाँजा जल देवता, कुई	-	केवल मंदिर एवं कोठी का स्थान देवता के नाम है। देवता की 60 बीघा ज़मीन मुज़ारों के नाम चढ़ गई है।
15.	जोगेश्वर महादेव, दलाश	-	5 बीघा।
16.	टकरासी नाग, टकरासी	-	पहले कुल भूमि 212 बीघा थी, जिसमें से अब देवता के पास केवल 12 बीघा भूमि ही रह गई है। बाकी सारी मुज़ारों के नाम हो गई है।
17.	तराली नाग, तराला	-	मंदिर प्रांगण के नज़दीक लगभग 1 बीघा।
18.	दुर्गा देवी, आनी	-	मंदिर समिति के नाम 7 बिस्वा ज़मीन है।
19.	द्रशौणी देवता, डीम	-	एक बीघा।
20.	नारायण देवता, चौकी	-	मंदिर परिसर की 2 बिस्वा ज़मीन।

21.	नारायण देवता, बनास	-	मंदिर परिसर की 8 बिस्वा भूमि।
22.	पच्छला देवी, देहुरी	-	पहले कुल 164 बीघा ज़मीन थी, जिसमें से 14 बीघा देवी के नाम है, बाकी सारी 150 बीघा भूमि मुज़ारों के नाम चढ़ चुकी है।
23.	पटारनी नाग, पटारना	-	13 बिस्वा।
24.	पनेउई नाग, पनेऊ	-	20 बीघा।
25.	बशावली नारायण, पकरेड़	-	16 बिस्वा।
26.	बाड़ी दुर्गा, बाड़ी	-	5 बीघा।
27.	बिननी महादेव, बिनन	-	पूर्व की 500 बीघा ज़मीन में से देवता के नाम वर्तमान में केवल 25 बीघा भूमि ही रह गई है, शेष मुज़ारों के नाम चढ़ गई है।
28.	बैहनी महादेव, वैहना	-	एक बीघा।
29.	भझारी देवता, कोट	-	भूमि अधिनियम से पूर्व देवता के नाम 145 बीघा भूमि थी, जिसमें से 100 बीघा मुज़ारों को चली गई और शेष 45 बीघा देवता के नाम पर है।
30.	मुरलीधर, बटाला	-	भूमि अधिनियम से पूर्व देवता के पास 300 बीघा भूमि थी जो सारी मुज़ारों के नाम चढ़ गई है।
31.	लक्ष्मी नारायण (ठाकुर), डौहवी	-	पूर्व की कुल 500 बीघा भूमि में से, 470 बीघा भूमि मुज़ारों के नाम चढ़ गई है, शेष 30 बीघा देवता के पास है।
32.	विष्णु नारायण, कुटवा	-	मात्र 2 बिस्वा भूमि है।
33.	व्यास ऋषि, कुंईर	-	पहले कुल 1104 बीघा भूमि थी, जिसमें से भूमि अधिनियम के बाद 1088 बीघा मुज़ारों को चली गई और शेष 16 बीघा देवता के पास है।
34.	व्यास ऋषि, झरौणू	-	पूर्व की कुल 1150 बीघा भूमि में से 600 बीघा मुज़ारों को चली गई तथा शेष 550 बीघा देवता के नाम है।
35.	शमशरी महादेव, कराणा	-	35 बीघा।
36.	शमशरी महादेव, शमशर	-	कुल 2200 बीघा ज़मीन थी, जो मुज़ारों के नाम चढ़ गई है।
37.	शाणी दुर्गा, शाणी	-	4 बीघा।
38.	सराजपाल, जाओं	-	केवल मंदिर स्थान की भूमि।
39.	सराजपाल, पाली	-	केवल मंदिर स्थान की भूमि।
40.	सरीणी देवता, लफाली	-	केवल मंदिर व देउरा स्थल की भूमि।

कुल्लू दशहरा में भाग लेने वाले बाहरी सराज के देवता

निरमंड खंड

1.	चंभू कशोलड़, गाँव कशोली।		
2.	चंभू चकेश्वर, गाँव रंदल।		
3.	चंभू सनगेसर, गाँव देउगी।		
4.	चजाई नाग, गाँव शरशाह।		
5.	नगेला देव, गाँव डमैहड़ी।		
6.	नारसिंह, गाँव सूमा।		
7.	दमासन देवी, गाँव कुशवा।		
8.	बड़ासन देवी, गाँव बाड़ी।		
9.	लटासण देवी, गाँव दुराह।		
10.	शक्त ऋषि, गाँव थंथल ।		
11.	जलांडी ऋषि, गाँव सराहन।	-	दशहरे में सम्मिलित होने की परम्परा थी, वर्ष 1969 से शामिल नहीं हो रहे हैं।
12.	जाहरू नाग, खरगा।	-	पहले दशहरे में सम्मिलित होते थे, लेकिन अब शामिल नहीं होते।
13.	मारकंडा ऋषि, गाँव नोर।	-	दशहरे में भाग लेने की परम्परा थी, परन्तु अब पिछले 50-60 वर्षों से सम्मिलित नहीं हो रहे हैं।
14.	मारकंडा ऋषि, गाँव शलाट।	-	दशहरे में शामिल होने की परम्परा थी, परन्तु अब पिछले 80-90 वर्षों से भाग नहीं ले रहे हैं।
15.	रियासी नाग, गाँव ढलैर।	-	दशहरे में सम्मिलित होने की परम्परा थी, लेकिन गत 80-90 वर्षों से भाग नहीं ले रहे हैं।

आनी खंड

1.	खुडीजल देवता, गाँव देहुरी।		
2.	टकरासी नाग, गाँव टकरासी।		
3.	द्रशौणी देवता, गाँव डीम।		
4.	व्यास ऋषि, गाँव कुंईर।		
5.	व्यास ऋषि, गाँव झरौणू।		
6.	कुंगशी महादेव, गाँव कुंगश	-	दशहरे में सम्मिलित होने की प्राचीन परम्परा थी, लेकिन अब पिछले 15 वर्षों से भाग नहीं ले रहे।
7.	खोलू देवता, गाँव देहुरी	-	अतीत में सम्मिलित होते थे अब नहीं।
8.	गडूमी नाग, गाँव शगागी	-	अतीत में सम्मिलित होते थे, लेकिन अब पिछले दस वर्षों से भाग नहीं ले रहे।
9.	जोगेश्वर महादेव, गाँव दलाश	-	अतीत में सम्मिलित होने की परम्परा थी, लेकिन अब भाग नहीं लेते हैं।
10.	पनेउई नाग, गाँव पनेऊ	-	दशहरे में सम्मिलित होने की परम्परा थी, लेकिन अब पिछले 15 वर्षो से शामिल नहीं हो रहे हैं।
11.	बाड़ी दुर्गा, गाँव बाड़ी	-	अतीत में सम्मिलित होते थे, लेकिन देवता को ले जाने में व्यय अधिक और आय कम होने के कारण अब शामिल नहीं होते हैं।
12.	बिननी महादेव, गाँव बिनन	-	दशहरे में जाने की परम्परा थी, लेकिन अब गत छह वर्षो से शामिल नहीं हो रहे हैं।
13.	बैहनी महादेव, गाँव बैहना	-	पहले भाग लेते थे, लेकिन देवता की यात्रा में व्यय अधिक होने कारण अब दशहरे में शामिल नहीं होते हैं।
14.	भझारी देवता, गाँव कोट	-	लगभग पिछले 30 वर्षो से शामिल हो रहे हैं।
15.	मुरलीधर, गाँव बटाला	-	दशहरे में सम्मिलित होते थे लेकिन गत 25 वर्षो से भाग नहीं ले रहे हैं।
16.	शमशरी महादेव, गाँव शमशर,	-	वर्ष 2005 से पूर्व 25 सालों तक दशहरे में सम्मिलित होते रहे, लेकिन अब भाग नहीं लेते हैं।







हिमाचल अकादमी